नन्ददुलारे वाजपेयी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का यह दृश्य है जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन कला का यह सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

नन्ददुलारे वाजपेयी

लेखक

प्रेमशंकर



साहित्य अकादेमी

Nand Dulare Vajpeyei : A monograph by Prem Shankar on the Hindi critic. Sahitya Akademi, New Delhi (1993), Rs. 15.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : १६८३
द्वितीय संस्करण : १६६३

साहित्य अकादेमी
प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, ३५ फ़ीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली ११० ००१
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली ११० ००१
क्षेत्रीय कार्यालय
जीवनतारा विल्डिंग, २३ ए/४४ एक्स, डायमंड हार्वर रोड, कलकत्ता ७०० ०५३
१७२, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई ४०० ०१४
३०४-३०५, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास ६०० ०१८
रंगमन्दिर, १०६, जे. सी. मार्ग, वंगलौर ५६०००२

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक : हिमगिरी प्रिन्ट प्वांईट, नई दिल्ली ११० ०१६

दिदिया-काका की स्मृति में
अशोक को सकुटुम्ब

क्रम

१. जीवन-रेखाएं और व्यक्तित्व

"गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, साधारण कद, स्वस्थ देह, स्वच्छ खादी के वस्त्र, स्वाभाविक प्रसन्नता, पास रहने वालों को ख़ुश कर देने वाली शालीनता तथा संयत भाषा, हृदय पर मधुर मुहर छोड़ती हुई। जो प्रायः नहीं मिटती" (चाबुक, पृ० ३६)। इन शब्दों में श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का शब्द-चित्र बनाया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का जन्म मगरायर ग्राम में (जिला उन्नाव, उत्तर प्रदेश) ४ सितंबर १६०६ ई० को हुआ था। यह इलाका बैसवाड़ा कहलाता है जो अवध जनपद के पश्चिमी भाग में स्थित है। इस क्षेत्र की अपनी बनावट है। सामंती सीमाओं में बंधा यह क्षेत्र जमींदारों के शोषण को देखता आया है और भयंकर जातिवाद में भी जकड़ा हुआ है। जिस कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज में आचार्य वाजपेयी जन्मे थे, वह बिस्वा-बीधा जैसी संकीर्णताओं में फंसा है, अर्थात् ब्राह्मणों के भी आर्थिक-सामाजिक वर्ग हैं। इस ओर संकेत करते हुए निराला ने एकमात्र पुत्री सरोज के निधन पर रची गई 'सरोज स्मृति' नामक लम्बी कविता में विद्रोही भाव से लिखा है: 'वे जो जमुना के-से कछार / पद फटे बिवाई के, उधार / खाये के मुख ज्यों, पिये तेल / चमरौधे जूते से सकेल/निकले, जी लेते, घोर गन्ध / उन चरणों को मैं यथा अन्ध/ कल-घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति/हो पूजूं, ऐसी नहीं शक्ति / ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह/करने की मुझको नहीं चाह।'

बैसवाड़ा की धरती उपजाऊ है पर किसान गरीब। नतीजा यह कि यहां के मध्यवर्ग के लोग अपनी रोजी-रोटी के लिए बाहर निकलने के लिए विवश हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के पिता पं० गोवर्धनलाल वाजपेयी और उनके मामा श्री शिवकुमार तिवारी ने मिडिल कक्षा तक शिक्षा पाई थी। एक दिन इन दोनों युवकों ने काम की तलाश में मगरायर ग्राम छोड़ दिया। आचार्य वाजपेयी के पिता पं० गोवर्धनलाल वाजपेयी राजस्थान के खेतड़ी नामक स्थान में माध्यमिक शाला के प्रधान अध्यापक बने। वे आदर्शवादी विचारों के व्यक्ति थे और उन पर महात्मा गांधी तथा आर्य समाज का विशेष प्रभाव था। राजस्थान का मारवाड़ी समाज बंगाल में व्यापार कर रहा था और पं० गोवर्धनलाल से वह इतना

प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें कलकत्ता बुला लिया जहां वे मारवाड़ी गोशाला की देख-रेख करने लगे। कुछ समय बाद १६०७ में वे बिहार के हजारीबाग की गोशाला के प्रबन्धक नियुक्त हुए।

आचार्य वाजपेयी के संस्कारों के निर्माण में बैसवाड़ा क्षेत्र की स्थितियां हैं और 'कवि निराला' नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है : 'जब महात्मा गांधी का सत्याग्रह आन्दोलन (१६२६-३०) गांव में जोर पकड़ चुका था मुझे उनके राजनीतिक स्वरूप का परिचय मिला। हमारे गांव में ही राजनीतिक सभाएं हुआ करती थीं। उनमें सक्रिय कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के साथ निराला और मैं प्रायः उपस्थित रहते थे' (कवि निराला, पृ० ३)। डा० रामविलास शर्मा के विवरण से भी इसकी पुष्टि होती है कि आचार्य वाजपेयी अपने पिताजी की आदर्शवादी राष्ट्रवादी भावनाओं के अनुरूप थे। वे लिखते हैं : 'किसानों की सभाएं होती हैं, बाहर से वक्ता आते हैं, अंग्रेजी राज क्या है, सुराज कैसे मिलेगा, किसानों को समझाते हैं, निराला स्वयं भी भाषण देते हैं, नन्ददुलारे वाजपेयी उनके साथ होते हैं। निराला के भाषण उत्तेजक और जोरदार हैं, अंग्रेजी राज में किसानों की दुर्दशा का सजीव चित्र खींच देते हैं, आर्थिक पक्ष पर बल देते हैं। नन्ददुलारे को लगता है, यह कोई छायावादी कवि नहीं कट्टर वस्तुवादी बोल रहा है। उन्हें आश्चर्य होता है, उनके युवक मित्र तो मौखिक रूप से देशद्रोही बने रहे, निराला गांवों में किसानों का संगठन कर रहे हैं' (निराला की साहित्य साधना, खंड १, पृ० १७०) आचार्य वाजपेयी के पिता हजारीबाग की सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रुचि लेते थे और १६२६ के स्वतंत्रता आंदोलन में बंदी हुए थे। आचार्य वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'नया साहित्य : नये प्रश्न' का समर्पण करते हुए लिखा है : 'सम्मान्य और श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू को, स्वतंत्रता-संघर्ष के दिनों की, हमारे परिवार के साथ उनके घनिष्ठ परिचय और पूज्य पिता-जी के साथ हजारीबाग जेल के सहवास की स्मृति में।'

आचार्य वाजपेयी में बैसवाड़ा क्षेत्र का स्वाभिमानी स्वभाव था जो जीवन संघर्षों से जूझते आत्मविश्वासी व्यक्ति में होता है। वे स्वाभिमानी थे पर अहंकारी नहीं, वे बड़ों से टकराते थे, पर छोटों को अमित स्नेह देते थे (डा० बच्चनसिंह का पत्र ११-५-८२) मगरायर ग्राम आचार्यजी से लगभग डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही छूट गया था और वे पिताजी के साथ हजारीबाग चले गए थे, पर प्रायः ग्रीष्मावकाश में गांव आ जाते थे और यह क्रम उस समय तक बना रहा जब वे सागर में आचार्य-अध्यक्ष थे। पैतृक मकान के सामने ही, अपने विशाल निजी पुस्तकालय के लिए उन्होंने एक भवन भी बनाने का प्रयत्न किया, पर वह अधूरा ही रह गया। आचार्यजी जब भी गर्मियों में गांव आते सुबह-शाम उनका घूमने का कार्यक्रम रहता। गांव में सब बड़ों को वे सम्मान देते, किसी भी बिरादरी के हों,

काका, ददुआ जैसे स्नेहभरे सम्बोधन देते। युवकों से उनके हाल-चाल लेते और उन्हें हर प्रकार से उत्साहित करते। शाम के समय गांव के समीप कुएं पर स्नान करते और खुली जिन्दगी का आनन्द लेते। आचार्यजी जब गांव आते तो उनके चारों ओर एक मेला-सा जुट जाता और वे सबकी व्यथा-कथा सुनते और यथा-संभव सहायता भी करते। इस मामले में वे अतिशय उदार और उपकारी व्यक्ति थे।

आचार्य वाजपेयी के बाल्यकाल की करुण घटना यह कि १९०७ में, जब लगभग एक वर्ष के थे, वे मातृहीन हो गए। पिता ने विवश स्थिति में दूसरा विवाह किया और नयी मां का भरपूर वात्सल्य वाजपेयीजी को मिला। आचार्य वाजपेयी में नारी के प्रति परम सम्मान भाव था। उनका विवाह १९२५ ई० के आरंभ में हुआ था और पत्नी श्रीमती सावित्री मिश्र को उन्होंने आजीवन अपना सम्पूर्ण आदर-भाव दिया। जब कभी कोई महिला आचार्यजी के कक्ष में आती वे तुरन्त उठ खड़े होते और उसके स्वागत-सत्कार में लग जाते थे। अपनी तीन सन्तान—दो पुत्र और एक पुत्री में वे बिटिया पद्मा की बात पर सबसे अधिक ध्यान देते थे। यहां तक कि अपनी पालिता-पोषिता कन्या सुधा को वे बहुत चाहते थे और उसका विवाह उन्होंने बड़े उत्साह से किया था। विवाह के कुछ वर्षों में ही उसे खोकर वे बहुत दुखी हुए थे। नारी के प्रति यह सम्मान-भाव आचार्य वाजपेयी के सुसंस्कृत व्यवहार का साक्ष्य उपस्थित करता है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की आरंभिक शिक्षा हजारीबाग में घर पर ही आरंभ हुई। पिता पं० गोवर्धनलाल वाजपेयी स्वयं अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा में रुचि लेते थे। "शैशवावस्था में उन्हें पिताजी ने चालीस तक पहाड़े याद कराए और सात वर्ष की अवस्था तक पाणिनि की अष्टाध्यायी कंठाग्र करा दी थी। इसके साथ ही उन्हें अमरकोष का मुख्यांश स्मृतिबद्ध करा दिया गया और रघुवंश के अध्यापन के लिए एक स्थानिक मैथिल पंडित के पास भेजा गया। सात वर्ष की अवस्था के पूर्व ही उन्हें अंग्रेजी पढ़ाने के लिए नगर के एक अध्यापक प्रतिदिन तीन मील चलकर सीतागढ़ (गोशाला का ग्राम) आया करते थे और चित्रों के माध्यम से संज्ञा, क्रियाविशेषण, विशेष्य आदि को पहचानने की आरम्भिक शिक्षा देते थे। इस प्रकार गणित, संस्कृत और अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा उन्हें घर पर ही दी गयी थी', (आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : व्यक्ति और साहित्य : डा० उमेश मिश्र का लेख : आचार्य वाजपेयी का जीवन परिचय, पृ० १९)।

आरंभिक शिक्षा के लिए आचार्य वाजपेयी का प्रवेश हजारीबाग के मिशन स्कूल में हुआ और वहीं से उन्होंने मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की और उसके अनन्तर वहीं के सेंट कोलम्बस कालेज में प्रवेश किया। आचार्य वाजपेयी ने १९२२ में मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की थी और उस समय उनकी आयु केवल

पन्द्रह-सोलह वर्ष थी, जो काफी कम कही जाएगी। निश्चय ही इससे हम उनकी कुशाग्र बुद्धि का अनुमान लगा सकते हैं। वाजपेयीजी के पिता सीतागढ़ में थे और हजारीबाग वहां से लगभग चार मील दूर था पर वे साइकिल पर अपने स्कूल-कालेज आया करते थे। सेंट कोलम्बस कालेज में पहले उन्होंने विज्ञान के विषय लिए थे, पर बाद में कला के विषय लिए और १९२५ में इन्टरमीडियेट की परीक्षा उत्तीर्ण की। सीतागढ़ का प्राकृतिक ग्राम परिवेश आचार्य वाजपेयी के संवेदन को निश्चित प्रभावित करता होगा क्योंकि उन्होंने अपनी रचनायात्रा का आरंभ कविताओं से किया। यहीं उन्होंने अपने पिता के सान्निध्य में उस समय की हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएं पढ़ीं—मर्यादा, सरस्वती आदि और इस प्रकार उनके आरंभिक साहित्य-संस्कार बने।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के जीवन का मुख्य चरण उस समय आरम्भ होता है जब जुलाई १९२५ में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए कक्षा में प्रवेश लिया। यह उनके पिता पं० गोवर्धनलाल वाजपेयी के राष्ट्रवादी विचार ही थे कि वाजपेयीजी बिहार छोड़कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में अध्ययन के लिए भेजे गए। आचार्य वाजपेयी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समीप ही स्थित आर्यभवन लाज में रहते थे और यहां उनका ऐसा जीवंत मित्र-मंडल था जो लिखने-पढ़ने में सक्रिय रुचि लेता था, विशेषतया साहित्य में। इनमें डा० रामअवध द्विवेदी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। वे उस समय के प्रसिद्ध कवि श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी के अनुज थे और आगे चलकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक नियुक्त हुए। आंखों की ज्योति चली जाने के बाद भी डा० द्विवेदी की सतेज प्रतिभा क्रियाशील रही जिसे उनके लेखन में देखा जा सकता है। आचार्य वाजपेयी बी० ए कक्षाओं में ही साहित्य में विशेष रुचि लेते थे और उन्होंने उस समय कुछ लेखन भी किया था। बी० ए में उन्होंने हिन्दी एवं अंग्रेजी साहित्य विषय लिए थे, पर एम० ए के लिए उन्होंने हिन्दी का चुनाव किया। बी० ए परीक्षा आचार्य वाजपेयी ने ससम्मान उत्तीर्ण की और प्रावीण्य सूची में चतुर्थ स्थान पर थे।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का छात्र जीवन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहीं उनका वह व्यक्तित्व रूपायित हुआ जो अन्तिम समय तक उनके साथ रहा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय राष्ट्रीय विचारधारा की संस्था है जिसका निर्माण महामना पं० मदनमोहन मालवीय जैसे विराट व्यक्तित्व के द्वारा हुआ था। विश्वविद्यालय का उस समय का परिवेश राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत था और आचार्य वाजपेयी ने अपने पिता से स्वदेश प्रेम की जो भावना पाई थी, उसका वहां विकास हुआ। आचार्यजी अंतिम समय तक खादी के वस्त्रों का उपयोग करते रहे, यद्यपि उनकी सुरुचि-सम्पन्नता में

रेशमी खादी को अधिक स्थान मिला। काशी में आचार्य वाजपेयी महामना मालवीय के अतिरिक्त अपने गुरुजन डा० श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के सम्पर्क में आए और उनसे बहुत कुछ सीखा भी। यहीं उन्होंने कवि जयशंकर प्रसाद के दर्शन किये जिनके यहां होने वाली गोष्ठियों में भी वे प्रायः जाया करते थे।

काशी में एम०ए हिंदी करते हुए आचार्य वाजपेयी ने अपने अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत किया और यहीं वह प्रशस्त पीठिका निर्मित हुई जिसे हम उनके लेखन की आधारभूमि कह सकते हैं। यहां एक महत्त्वपूर्व तथ्य की ओर संकेत करना जरूरी है क्योंकि आचार्यजी की समीक्षा का निकट संबध हिंदी स्वच्छन्दतावादी (रूमानी) कविता-छायावाद से है और उन्हें प्रायः छायावादी अथवा स्वच्छन्दतावादी समीक्षक कहा जाता है। उस समय काशी विश्वविद्यालय के हिंदी पाठ्यक्रम में परम्परागत अध्ययन कराया जाता था और आधुनिकता के लिए अधिक गुंजायश न थी। वर्षों तक जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के लिए विश्वविद्यालय के द्वार बंद थे। आगे चलकर प्रसाद के लिए तो कुछ गुंजायश हुई भी, पर निराला बहुत अरसे तक प्रवेश न पा सके। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने बी० ए में अंग्रेजी विषय लिया था और उसमें उन्हें अच्छे अंक मिले थे। वे अपने समय की चेतना से परिचित थे और वे विश्व के श्रेष्ठ साहित्य के पाठक भी थे। काशी विश्वविद्यालय में निराला को आमंत्रित किये जाने के सम्बन्ध में डा० रामविलास ने लिखा है कि 'निराला के प्रशंसकों में विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने वाले हिन्दी प्रेमी छात्र थे। इन्हीं में थे नन्ददुलारे वाजपेयी, गढ़ाकोला(निराला का गांव) के पास ही मगरायर के निवासी, गौर वर्ण, तेजस्वी, कुलीन कान्यकुब्ज काशी विश्वविद्यालय में शिक्षा-क्रम पूरा कर रहे थे' (निराला की साहित्य साधना, पृ० १४८)। यहां डा० रामविलास ने वाजपेयीजी की उपदेशात्मक राष्ट्रीय कविता का उद्धरण दिया है : वीर वंश के वीर अंश हो / विजयी बनना विघ्न-ध्वंस हो / भूलो मत समुचित उत्साह/मत विचलित हो आधी राह। रामविलास जी ने विस्तार से बताया है कि 'नन्ददुलारे वाजपेयी निराला के स्वागत की तैयारी में लग गए। बरसात बीतने पर निराला काशी आए। आर्यभवन में नन्ददुलारे के साथ ठहरे। अमरूदों का बगीचा, हरे-भरे खेत, कुछ दूर पर महिला छात्रावास, निराला को जगह पसंद आयी। वह छात्रों में घुल-मिल गए' (वही, पृ० १४९)। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में निराला का आगमन एक घटना थी और युवक नन्ददुलारे वाजपेयी ने एक प्रकार से खतरा मोल लिया। यहां निराला जी ने उन अध्यापकों को आड़े हाथों लिया जो नयी रचना-शीलता का स्वागत नहीं करना चाहते थे। निराला ने इस घटना के विषय में स्वयं चिंता व्यक्त की कि कहीं वाजपेयीजी के कैरियर पर इसका बुरा प्रभाव न पड़े। १९-१०-१९२९ के अपने एक पत्र में वाजपेयीजी

ने निरालाजी को लिखा : "मुझे १४ नम्बरों से फर्स्ट क्लास नहीं मिला, इसमें कुछ रहस्य भी है..." (निराला की साहित्य साधना, पृ० १९२)। निरालाजी ने अपने निबन्ध संकलन 'चाबुक' में इस घटना का उल्लेख विस्तार से किया है : "काशी चल कर मैं वाजपेयीजी के यहां ठहरा। वाजपेयीजी आर्यभवन में रहते थे। पहले दो-एक बार उन्हें देख चुका था, खत, किताबत जारी हो चुकी थी, अब नजदीक से अच्छी तरह देखने का मौका मिला" (चाबुक : पृ० ३६)। तत्कालीन विभागाध्यक्ष डा० श्यामसुन्दर दास नन्ददुलारे वाजपेयी को बहुत चाहते थे, उन्होंने अपना आशंसा-पत्र देते हुए लिखा : "आश्चर्य है कि नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे प्रतिभावान छात्र को प्रथम श्रेणी नहीं मिली।" डा० श्यामसुन्दर दास के अकादमिक कार्यों में वाजपेयीजी का सक्रिय सहयोग रहा, और भारत (प्रयाग) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, गीता प्रेस गोरखपुर आदि में उन्हें ले जाने का प्रयत्न बाबू साहब ने किया। डा० श्यामसुन्दर दास के योग्यतम शिष्यों में आचार्य वाजपेयी की गणना की गई (सुधाकर पाण्डे : श्यामसुन्दर दास, पृ० २५) और बाबू साहब ने हिन्दी के निर्माता खंड २ में वाजपेयीजी को सम्मिलित किया और २९वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पूना अधिवेशन में उनके सभापति भाषण 'प्रगतिशील साहित्य' का विशेष उल्लेख किया।

१९२९ में एम० ए करने के उपरान्त आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने शोध-कार्य आरम्भ किया और इसके लिए उन्हें पचास रुपये की छात्रवृत्ति भी मिली, पर पिताजी की जेलयात्रा से उत्पन्न विषम पारिवारिक परिस्थितियों ने उन्हें आजीविका के लिए विवश किया। उस समय लीडर प्रेस प्रयाग से 'भारत' नामक हिन्दी साप्ताहिक प्रकाशित होता था। यह संस्था पं० मदनमोहन मालवीय तथा पं० मोतीलाल नेहरू से सम्बद्ध थी और सी० वाई० चिंतामणि इसका कार्य देखते थे। 'भारत' में वाजपेयीजी की नियुक्ति डा० श्यामसुन्दर दास के प्रयत्नों से हुई। १ सितंबर १९३० के 'भारत' साप्ताहिक में सम्पादक के रूप में नन्ददुलारे वाजपेयी का नाम छपा है और इस पद पर उन्होंने १० नवंबर १९३२ तक कार्य किया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का समीक्षक रूप इतना ख्यात हो गया कि प्राय: उनका सम्पादक रूप भुला दिया गया, विशेषतया 'भारत' के उनके सम्पादकीय और टिप्पणियां। पर इनसे उनकी प्रखर राष्ट्रीय भावना और सजग सामाजिक चेतना का पता चलता है। १ सितंबर १९३० के अपने प्रथम सम्पादकीय 'दबा दिया जाय' में आचार्य वाजपेयी ने महामना मालवीयजी आदि नेताओं को ६-६ मास की सजा दिए जाने का विरोध किया। राजनीति और साहित्य दोनों को समान संजीदगी से लेते हुए वाजपेयीजी ने सम्पादक के जागरूक कर्त्तव्य का निर्वाह किया और उस समय उनकी आयु केवल २४-२५ वर्ष थी। 'भारत' के सम्पादक के रूप में आचार्य वाजपेयी ने अपनी सतेज प्रतिभा, प्रतिबद्ध निर्भयता का परिचय

दिया। उन्होंने निर्भीक सम्पादकीय लिखे और राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को अपना भरपूर समर्थन दिया। राजनीति के साथ उन्होनेसाहित्य को भी स्थान दिया और आधुनिक काव्य, विशेषतया छायावाद से सम्बद्ध निबंध लिखे जो आगे चलकर 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' में प्रकाशित हुए। इसके लिए उन्हें पुरातन-पथियों के विरोध का सामना करना पड़ा और अंत में 'भारत' से हटना पड़ा। १० नवंबर १६३२ में 'भारत' से त्यागपत्र देते हुए 'अवसर-ग्रहण' शीर्षक से उन्होंने जो अंतिम टिप्पणी लिखी, वह उनके निर्भीक व्यक्तित्व का प्रमाण है : 'मेरी राजनीति मेरी परिस्थिति की उपज है। उसे मैंने जीवन की आवश्यकता समझ-कर अर्जित किया है।' आदि

'भारत' से त्यागपत्र देने के बाद वाजपेयीजी डा० श्यामसुन्दरदास के निमंत्रण पर काशी लौट आए और वहां सूरसागर के सम्पादन में लग गए। लगभग चार वर्षों तक वे इस कार्य में लगे रहे। 'सूरसागर' की संक्षिप्त संपादकीय विज्ञप्ति में वाजपेयीजी ने लिखा है कि 'मुझे पूरा संतोष तो तभी प्राप्त होगा जब 'सूरसागर' के चार वर्षों के संपादन-काल के अपने संपूर्ण सम्पादकीय प्रयत्नों को पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर सकूंगा।' सूरसागर का कार्य पूरा करने के बाद वाजपेयीजी रामचरितमानस के सम्पादन के लिए गीता प्रेस गोरखपुर चले गए। यहां श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार का उन्हें विशेष स्नेह मिला, पर जलवायु उनके अनुकूल न थी। एक दूसरा द्वन्द्व वैचारिक भी था। वाजपेयीजी का साहित्य-बोध रामचरितमानस का वैज्ञानिक, विवेकसम्मत संस्करण चाहता था जबकि गीत प्रेस की नीति धार्मिक अधिक थी। १६३६ के अंत में उन्होंने गोरखपुर छोड़ दिया। निरालाजी को लिखे गए एक पत्र (१७ अक्टूबर १६२८) से ज्ञात होता है कि वाजपेयीजी 'स्वदेश' विशेषांक का सम्पादन करने भी गोरखपुर गए थे और उस समय वे स्नातकोत्तर कक्षा के छात्र थे। सूरसागर तथा रामचरितमानस का सम्पादन करते हुए वाजपेयीजी ने मध्यकालीन भक्तिकाव्य के साथ भारतीय इतिहास, दर्शन आदि का भी गहरा अध्ययन किया और इस प्रकार अपने चिन्तन को जीवत परम्परा से जोड़ा। सूरदास पर लिखी गई उनकी पुस्तक के अतिरिक्त तुलसी के विषय में रचे गए उनके लेख भक्तिकाव्य के विषय में उनकी सजग दृष्टि का परिचय देते हैं।

१६३६ के अंत से लेकर १६४१ के आरम्भ तक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रयाग को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और वे अपना जीवन स्वतंत्र लेखन के सहारे चलाना चाहते थे जो उन दिनों काफी कठिन था। हिन्दी में उस समय स्वतंत्र लेखन एक जोखिम भरा कार्य था और प्रेमचन्द जैसे लेखक जिन्होंने जागरण, हंस पत्र चलाए और किसी प्रकार एक छापाखाना की व्यवस्था की वे भी निरन्तर संघर्ष की जिन्दगी से गुजरे। प्रयाग में रहकर आचार्य वाजपेयी को जीवन के

कटु अनुभव हुए और उन्हें जल्दी ही यह एहसास हो गया कि केवल लेखन के सहारे जीवन-निर्वाह कठिन है। जुलाई १९४१ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निधन से रिक्त पद पर वाजपेयजी की नियुक्ति हुई और इस प्रकार उन्हें जीविका का एक निश्चित आधार मिला।

जुलाई १९४१ से लेकर फरवरी १९४७ तक आचार्य वाजपेयी का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का अध्यापन-काल कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। काशी विश्वविद्यालय जैसे मातृपीठ में नियुक्ति एक युवा समीक्षक के लिए गौरव का विषय थी, खासतौर पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे यशस्वी व्यक्ति के स्थान पर। काशी की पंडित परम्परा में आधुनिक साहित्य, विशेषतया स्वच्छन्तावाद छायावाद के लिए गुंजायश कम थी और हिन्दी पाठ्यक्रम में उसे स्थान प्राप्त नहीं था। वाजपेयीजी की पहली टकराहट इस पुरातनपंथी दृष्टि से हुई जो प्राचीन शास्त्र के उद्धरणों से नयी पीढ़ी को आतंकित करना चाहती थी। एक अध्यापक के रूप में वाजपेयीजी ने सर्जनात्मक अध्यापन का परिचय दिया जिसका उद्देश्य छात्र समुदाय में साहित्य के प्रति सही रुचि उपजाना होता है। मुद्रण-प्रकाशन के इस ज़माने में सूचनाएं तो सबके पास लगभग वही हैं, पर प्रश्न है कि प्रतिभावान अध्यापक उन्हें ज्ञान-सम्पत्ति बनाकर उस सामग्री को अपने छात्रों तक किस रूप में पहुंचाता है, विद्यार्थियो में कितनी प्रेरणा उपजाता है। जिन्होंने आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी अथवा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे आचार्यों की कक्षाओं मे बैठने का सौभाग्य पाया है वे जानते हैं कि सर्जनात्मक अध्यापन के साथ छात्र एक अन्तरंग यात्रा करते हैं और उनमें से कुछ में उस चेतना का विस्तार होता है कि आगे चलकर वे अपनी रचनात्मक क्षमता को अभिव्यक्ति दे सकें। वाजपेयीजी ने अध्यापन की शुष्क जड़ता को तोड़कर एक नयी लकीर बनाने का प्रयत्न किया और इसके लिए पुरातनपंथियों द्वारा उन पर टिप्पणियां भी की गयीं, पर उनका लक्ष्य निर्भ्रान्त था।

काशी विश्वविद्यालय में कार्य करते हुए आचार्य वाजपेयी ने उस समय की युवा प्रतिभाओं से जीवित सम्पर्क स्थापित किया और इस माध्यम से एक नयी चेतना लाने का कार्य किया। यह कोई राजनीतिक गठबन्धन अथवा गिरोह बनाने का नहीं, बल्कि इस बात का प्रयत्न था कि युवा पीढ़ी को नई सर्जनात्मक दिशा मिले और उनमें निर्भीक चिन्तन का विकास हो। डा० बच्चनसिंह की पुस्तक 'क्रान्तिकारी कवि निराला' एम० ए परीक्षा के लघु शोधप्रबंध के रूप में लिखी गई जिसका निर्देशन आचार्य वाजपेयी ने किया था। युवा पीढ़ी में आचार्यजी की रुचि जीवन के अन्तिम क्षणों तक बनी रही और निर्विवाद कहा जा सकता है कि उन्होंने युवकों के निर्माण में गहरी दिलचस्पी ली। काशी में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की जिसके विषय में रेखा अवस्थी ने लिखा है: '१९५२

में काशी के लेखकों ने फासीवाद और ब्रिटिश दमन के विरोध में प्रस्ताव पारित किया था। पर काशी प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना १९४३ के फरवरी मास में हुई। अधिवेशन के सभापति नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपने भाषण में प्रगतिशील साहित्य की नकारात्मक भूमिकाओं तक सीमित रहने की दुर्बलता का जिक्र किया' (रेखा अवस्थी : प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, पृ० ४७)। डा० बच्चनसिंह ने अपने एक पत्र में स्वीकार किया है कि 'उनके (वाजपेयीजी) आते ही नवयुवकों का एक दल उनके इर्द-गिर्द छा गया। वाजपेयीजी के प्रोत्साहन से हम सब लोगों ने कहानियां, निबंध आदि लिखना शुरू किया—। उन्होंने यहां काशी प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। यह प्रगतिशील लेखक संघ वामपंथियों के प्रगतिशील लेखक संघ से किंचित भिन्न था। इसका चरित्र राष्ट्रीय और समाजवादी था। फिर आचार्य नरेन्द्रदेव के साथ उन्होंने सांस्कृतिक संघ की स्थापना की जिसके कई जलसे भी हुए' (डा० बच्चनसिंह का पत्र ११-५-१९८२)। इस प्रकार वाजपेयीजी ने काशी में एक नया सांस्कृतिक-साहित्यिक परिवेश निर्मित करने का प्रयत्न किया और इसके लिए उन्होंने युवा पीढ़ी को अपने साथ लिया। शिष्य श्री नरेश मेहता ने उन्हें 'ऋषिवत् आचार्य' कहा है ('उत्तरकथा')।

काशी में पुरातनपंथी पंडितों की चुनौती स्वीकार करते हुए आचार्यजी ने स्वयं को भारतीय साहित्यशास्त्र के गहन अध्ययन में नियोजित किया। अपने पिताश्री के प्रयत्न से वे संस्कृत भाषा और साहित्य से परिचित थे, पर काशी के छात्रजीवन तथा अध्यापनकाल में उन्होंने इस अध्ययन को विस्तार दिया। आवश्यकता के समय संस्कृत विद्वानों की सहायता लेते हुए उन्होंने भारतीय साहित्यशास्त्र सम्बन्धी अपने अध्ययन को प्रशस्त किया और अपनी समीक्षा में उसका उपयोग आज के संदर्भ में किया। संस्कृत-हिन्दी का उनका उच्चारण इतना शुद्ध था कि विद्वान भी आश्चर्य करते थे। अपेक्षाकृत एक कनिष्ठ अध्यापक होते हुए भी वाजपेयीजी ने काशी में अपने व्यक्तित्व की सुगंध से सबको आप्लावित किया। इसी समय वे जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, प्रेमचन्द आदि के निकट सम्पर्क में आए। काशी में आचार्य वाजपेयी का अन्तिम महत्वपूर्ण आयोजन निराला स्वर्ण जयंती का कार्यक्रम था। इस विषय मे उन्होंने स्वयं लिखा है : 'सन् ४७ के जनवरी मास में निराला के इक्यावनवें जन्मदिवस पर हम लोगों ने उनकी स्वर्णजयन्ती मनाने का आयोजन किया था। यद्यपि यह शंका हमारे मन में बनी हुई थी कि निराला इस अवसर पर कोई संतुलित भाषण दे सकेंगे या नहीं—कहीं बहक तो नहीं जाएंगे, पर जयंती के अवसर पर काशी में एकत्र हुए अपने पचासों साहित्यिक मित्रों को देखकर उनका मन उत्फुल्ल हो गया; (कवि निराला, पृ० १२)। इसी के बाद वाजपेयीजी सागर आ गए। इस समय काशी ने उन्हें जो भावभीनी बिदाई दी, वह अविस्मरणीय है।

मार्च १९४७ में आचार्य वाजपेयी ने सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में अध्यक्ष पद ग्रहण किया और इसे भी विचित्र संयोग कहिए कि यह स्थान बैसवाडा और काशी के उनके समीपी मित्र श्री आनन्दमोहन वाजपेयी के असामयिक निधन से रिक्त हुआ था। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने निरालाजी को लिखे गए अपने पत्रों में आनन्दमोहन वाजपेयी का सस्नेह उल्लेख किया है। सागर ले आने में पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र की भी प्रेरणा थी जिन्हें महाकवि 'सूरदास' पुस्तक समर्पित की गई है : 'भारतीय साहित्य संस्कृति और राजनीति के मनस्वी साधक श्री द्वारकाप्रसादजी मिश्र को जिन्होंने राष्ट्रीय जीवन दर्शन और जीवनचर्या के साथ विश्व समाजवाद की आधुनिक कल्पना को प्रश्रय दिया है।' पं० मिश्रजी ने अपनी आत्मकथा 'लिविंग एन एरा' तथा अपने काव्य 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रे' की प्रस्तावना में उनका ससम्मान उल्लेख किया है। सागर आकर वाजपेयीजी के व्यक्तित्व को अधिक विस्तृत भूमि पर कार्य करने का अवसर मिला और यहां वे शिष्यों की पीढ़ियों को दिशा देते रहे। छोटी-छोटी पहाड़ियां और बीच में लहराता सुन्दर जलाशय सागर को प्राकृतिक सौन्दर्य देते हैं। प्रसिद्ध विधिवेत्ता डा० सरहरिसिंह गौर ने जीवन भर की संचित कमाई से सागर विश्वविद्यायल का निर्माण किया और इसे एक श्रेष्ठ शिक्षा-संस्थान बनाने के लिए उन्होंने अनेक विद्वानों को आमन्त्रित किया। आचार्य वाजपेयी १ मार्च १९४७ को सागर आए और ३० सितम्बर १९६५ तक यहा रहे। १ अक्टूबर १९६५ को उन्होंने विक्रम विश्वविद्यालय का कुलपति पद ग्रहण किया और वहीं २१ अगस्त १९६७ को उनका निधन हुआ।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के सागर-जीवन के अठारह से अधिक वर्ष उनके व्यक्तित्व को नयी दीप्ति देते हैं। उस समय प्रदेश में (पुराना मध्यप्रदेश) सागर एकमात्र आवासीय विश्वविद्यालय था, दूसरा विश्वविद्यालय नागपुर का था जो आवासीय न था। जब १९५७ में नया मध्यप्रदेश बना तब पूरे प्रदेश में सागर का एकमात्र विश्वविद्यालय था जो एक बड़े भाग की शिक्षा का निर्धारण करता था। आचार्यजी ने सर्वप्रथम हिन्दी पाठ्यक्रम का आधुनिकीकरण करते हुए उसे अधिकाधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। इस दिशा मे उनके कुछ निर्णय उल्लेखनीय हैं। उन्होंने स्नातकोत्तर कक्षाओं में समसामयिक भारतीय संस्कृति का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जिसमें भारतीय समाज और संस्कृति की मूल अवधारणाओं के अतिरिक्त साहित्य की सामाजिक पीठिका का अध्ययन कराया जाता है। इस प्रकार उन्होंने रचना को उसके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में रखकर देखने का आग्रह किया। इस माध्यम से वे युवा पीढ़ी को भारतीय रिक्थ से भी परिचित कराना चाहते थे, जैसे भारतीय संस्कृति का स्वरूप क्या है ? किन सामाजिक परिस्थितियों में भारतीय रचनाशीलता अग्रसर हुई है ? भक्तिकाव्य

के मूल में कौनसी शक्तियां अथवा प्रेरक उपकरण क्रियाशील हैं ? आधुनिक साहित्य के निर्माण में भारतीय नवजागरण की भूमिका क्या है ? आदि। आचार्यजी अपनी परम्परा को आज के संदर्भ में रखकर देखना चाहते थे ताकि युवा पीढ़ी अपने रिक्थ से अलगाव महसूस न करे। पाठ्यक्रम में भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र के स्वतंत्र प्रश्नपत्र की योजना की गई और आचार्य वाजपेयी स्वयं इसे पढ़ाते थे। भारतीय साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत उन्होंने रस-सिद्धान्त से लेकर ध्वनि-सिद्धान्त तथा औचित्य सम्प्रदाय आदि को सम्मिलित किया। विद्यार्थी पश्चिम के ज्ञान से परिचित हों, इसके लिये उन्होंने प्लेटो-अरस्तू से लेकर आई०ए०रिचर्ड्स और टी० एस० इलियट के विचारों को स्थान दिया। इस प्रकार परम्परा और प्रगति का प्रवेश उन्होंने युवा पीढ़ी के लिए कराया और वर्षों तक स्वयं इसका अध्यापन कार्य संभाला। विशेष अध्ययन के रूप में आचार्यजी ने तुलसी, सूर से लेकर प्रसाद, निराला तक के अध्यापन की व्यवस्था की। उनकी आधुनिक दृष्टि का प्रमाण यह कि सागर विश्वविद्यालय संभवत: पहला विश्वविद्यालय है जहां स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में नये हिन्दी काव्य को स्थान मिला। वाजपेयीजी ने हिन्दी पाठ्यक्रम की ऐसी व्यवस्था की कि हिन्दी का विद्यार्थी दूसरे विभागों की तुलना में पिछड़ा न रह जाय। वह सुदामा बनकर न जिए और वह अपनी हीन-भावना से मुक्त हो। नाम गिनाने की जरूरत नहीं किन्तु सागर में रहते हुए आचार्यजी ने दक्षिण के विद्यार्थियों को आकृष्ट किया और उनके लिए छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था की।

आचार्य वाजपेयी ने सागर में हिन्दी शोध को एक नया विस्तार दिया और सुदूर केरल से लेकर महाराष्ट्र, बंगाल, आंध्र, बिहार, तामिलनाडु, उत्तरप्रदेश आदि से शोधार्थी उनके पास आने लगे। इन पंक्तियों का लेखक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जब बी० ए का छात्र था तभी उसे वाजपेयीजी के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। इस बीच वे सागर आ गए और चाहते थे कि यहीं आकर पढ़ूं, पर मैं काशी का मोह नहीं छोड़ सका। उनका पत्र मिला कि काशी से मगहर की ओर कबीर जैसे क्रान्तिदृष्टा ही प्रयाण करते हैं। मैं शोध के लिए १६५० में सागर आ गया और संभत: उनके निर्देशन में पीएच० डी प्राप्त करने वाला प्रथम शोधार्थी हूं। उसी समय एक बार प्रयाग में मेरे सम्मान मे पं० वाचस्पति पाठक के घर एक गोष्ठी हुई तो आचार्यजी ने कहा कि मैं स्वयं तो डाक्टर नहीं बन सका पर मुझे प्रसन्नता है कि मेरे शिष्य को यह उपाधि मिली। उन्हीं के प्रयत्नों से मेरा शोधप्रबंध प्रसाद का काव्य' भारती भंडार, प्रयाग मे प्रकाशित हो सका।

आचार्य वाजपेयी ने सागर विश्वविद्यालय में शोध का कार्य एक योजना-बद्ध ढंग से कराया। एक बार किन्हीं विद्वान ने आलोचना करते हुए कहा कि यह शोध नहीं, समीक्षा है तो वाजपेयीजी ने उत्तर दिया कि 'यदि किसी सड़ी-

गली पोथी को निकाल लाना ही शोध है तो मैं इसे कबाड़ियों का काम मानता हूं।' वाजपेयीजी ने प्रयत्न किया कि साहित्य की प्रमुख धाराओं और विचारणाओं का वस्तुपरक विश्लेषण किया जाय जैसे भक्तिकाव्य, आधुनिक साहित्य की विभिन्न धाराएं आदि। उन्होंने महत्वपूर्ण कवियों सूर, तुलसी, जायसी, कबीर से लेकर प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि की रचनाशीलता के पुनर्मूल्यांकन का कार्य कराया। नये साहित्य से सम्बद्ध सबसे अधिक कार्य उस समय उनके निर्देशन में हुआ। पर आचार्यजी का सबसे स्मरणीय कार्य वह है जहां वे भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता की भावना से परिचालित हैं। अपने निबंध : भारतीय साहित्य की एकता में वे लिखते हैं : 'यदि हम अपने देश के प्राचीन साहित्य को देखें, तो उसमें एक मूलभूत एकता दिखाई देगी। इसका एक बड़ा प्रमाण यह है कि हमारे कतिपय महान साहित्यिकों के जन्मस्थान का पता न होने पर भी समस्त प्रान्तों में उनका प्रचलन है, और उन्हें समान सम्मान प्राप्त है' (नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १२९)। इसी सांस्कृतिक भावना से वाजपेयीजी ने अहिन्दी प्रदेश से आने वाले शोधार्थियों को तुलनात्मक विषय दिए : तमिल और हिन्दी का राम भक्ति अथवा कृष्ण भक्ति काव्य, मलयालम तथा हिन्दी का आधुनिक स्वच्छन्दतावादी अथवा प्रगतिवादी काव्य, तेलगु तथा हिन्दी का आधुनिक उपन्यास साहित्य अथवा कहानी, मराठी-हिन्दी नाटक . एक तुलनात्मक अध्ययन। आचार्यजी की इस अकादमिक प्रेरणा ने उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम के मध्य एक सांस्कृतिक सेतु का कार्य किया। कठिनाई यह है कि भारतीय भाषाओं में सही संवाद और विनिमय की स्थिति नहीं है, विशेष रूप से हिन्दी के विद्यार्थी अन्य भाषाओं की रचनाशीलता से प्राय: अनभिज्ञ हैं। वाजपेयीजी ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। केरल की अपनी लम्बी यात्रा के सम्बन्ध में उन्होंने एक पुस्तक लिखी जो पहले 'राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं' नाम से प्रकाशित हुई थी। बाद में 'हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग' नाम से उसका नया संस्करण आया। इसमें उन्होंने भारतीय भाषाओं के साहित्यिक आदान-प्रदान पर बल देते हुए कहा : 'तुलसी और सूर ने मध्ययुग में यद्यपि प्रादेशिक जनभाषा में अपनी कृतियां प्रस्तुत की हैं, परन्तु वे कृतियां किसी भी देश के लिए गौरव की वस्तु हैं। आज हम नये सिरे से सार्वदेशिक हिन्दी का आह्वान करते हैं' (हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग, पृ० ७५)।

आचार्य वाजपेयी ने सागर विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग को नई बौद्धिक सक्रियता दी और उसे देश के मानचित्र पर एक महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में उन्हें सफलता मिली। वाजपेयीजी के द्वार सबके लिए खुले थे। वहां कोई भी निस्संकोच जा सकता था। वे सबकी शंकाओं का समाधान करते और उनका समृद्ध पुस्तकालय (जो उनके निधन के अनन्तर काशी नागरी प्रचारिणी सभा को दान

कर दिया गया) सबके उपयोग के लिए था। आचार्यजी का व्यक्तित्व इस मायने में प्रजातांत्रिक था कि वे छोटों की बात भी सुनते थे। नये काव्य को लेकर उनके मन में पहले कुछ 'रिजर्वेशन' थे पर जब युवा विद्यार्थियों से उनकी बातचीत होती तो वे उस पर ध्यान देते थे। परिणाम यह हुआ कि जीवन के अन्तिम क्षणों में वे नयी कविता पर लिख रहे थे। शाम के समय आचार्यजी के यहां एक जमघट जैसा लगता था जिसे सागर के लोग 'पंडितजी का दरबार' कहते थे। इनमें छात्रों की संख्या काफ़ी होती थी। बहस-मुबाहसा, चर्चा-परिचर्चा, विचार-विनिमय के बीच वाजपेयीजी अपनी टिप्पणियां देते और युवा पीढ़ी उनसे लाभ उठती। कई बार वे शिष्य-मंडली के साथ घूमने निकल जाते और उस दौर में भी साहित्यिक बातचीत का क्रम जारी रहता। बीच-बीच में हास्य-विनोद का माहौल भी बनता पर वाजपेयीजी का हास्य नितांत निश्छल होता था और एक स्तर से नीचे की बात वे कभी पसंद नहीं करते थे, जैसे किसी के चरित्र-हनन के प्रयत्न को वे कदापि सहन नहीं कर सकते थे। इस विषय में वे कहते : 'चेतना में विष नहीं पालना चाहिए।'

आचार्य वाजपेयीजी ने सागर में छात्रों की कई पीढ़ियां बनाईं और उन्हें भरपूर प्रश्रय दिया। उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने स्वयं 'आलोचना' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का सम्पादन (१९५६ से १९५९ तक) किया और इसमें अपने शिष्यों, युवा सहयोगियों को प्रकाशन दिया। नयी प्रतिभाओं को हर प्रकार प्रोत्साहित करने में वे सुख मानते थे, अक्सर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की तरह कहते : वट बरोहों मे जीता है, गुरु अपने शिष्यों में। आचार्यजी ने एम० ए परीक्षा के लिए लघु शोधप्रबंध की व्यवस्था की और इनमें कई को प्रकाशित करवाया। इन्हें पाठक वर्ग की स्वीकृति भी मिली। इसी प्रकार पी एच० डी शोधप्रबंध के प्रकाशन में उन्होंने रुचि ली और अन्य प्रकाशकों के अतिरिक्त कानपुर में ग्रन्थम नामक संस्था को सागर विश्वविद्यालय के प्रबन्धों के प्रकाशन हेतु विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। उनका कहना था कि किसी कार्य की सार्थकता उसके प्रकाशन में है।

सागर में आचार्य वाजपेयी का व्यक्तित्व केवल हिन्दी विभाग तक सीमित नहीं था, वरन् उन्होंने एक प्रकार से सम्पूर्ण विश्वविद्यालय को नेतृत्व दिया। यहां वे अनेक प्रशासनिक पदों पर रहे—अधिष्ठाता कला संकाय, प्रतिहस्तक (प्राक्टर), कार्यकारिणी तथा अन्य समितियों के सदस्य, विश्वविद्यालय शोध पत्रिका 'मध्य-भारती' के सम्पादक आदि। इन प्रशासनिक व्यस्तताओं के बीच वाजपेयीजी का अध्ययन और लेखन निरन्तर गतिशील रहे। वे नई से नई पुस्तकें पढ़ते और उन पर अपनी प्रतिक्रिया देते। वे उन विरल विभागाध्यक्षों में थे जो सामयिक लेखन में रुचि लेते थे, यद्यपि कई बार उनकी प्रतिक्रियाएं सम्पूर्ण प्रशंसात्मक नहीं होती थीं, विशेषतया जहां कृतियां जातीय परम्परा से विच्छिन्न दिखाई देती थीं।

सागर में 'आलोचना' (दिल्ली), 'मध्यभारती' (सागर) के सम्पादन के अतिरिक्त उनकी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुईं जो उनकी अकादमिक सक्रियता का प्रमाण है। आधुनिक साहित्य, महाकवि सूरदास, प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन, *नया साहित्य : नये प्रश्न, राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं, कवि निराला, राष्ट्रीय* साहित्य तथा अन्य निबंध, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, आधुनिक काव्य : रचना और विचार आदि पुस्तकों का प्रकाशन इसी बीच हुआ।

आचार्य वाजपेयी ने १ अक्टूबर १९६५ को विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलपति पद का भार ग्रहण किया और २१ अगस्त १९६७, अपने निधन के समय तक वहां कार्यरत रहे। अधिकांश का विचार है कि कुलपति पद स्वीकार करने का वाजपेयीजी का निर्णय सही नहीं था, विशेषतया विश्वविद्यालयों के बिगड़े माहौल में। स्थिति इतनी खराब हो चुकी है कि हमारे शिक्षा संस्थान हर प्रकार की अराजकता के केन्द्र हैं और अब तो इनकी प्रासंगिकता तथा सामाजिक उपयोगिता में संदेह किया जाने लगा है। वाजपेयीजी मूलतः साहित्यिक अभिरुचियों के सहज संवेदनशील व्यक्ति थे और अपनी समस्त प्रशासनिक क्षमताओं तथा नेतृत्व गुण के बावजूद राजनीति के क्षुद्र दांव-पेंच, जोड़-गांठ उनसे नहीं सध सकते थे। इससे उनके मूल्यों पर आंच आती थी जिसे उन्होंने अपने लेखन में प्रक्षेपित किया और जीवन में आचरित किया। पर कुलपति पद स्वीकार करने के मूल में उनकी यह इच्छा थी कि वे अपनी कल्पनाओं की शिक्षण संस्था बनाएं पर वर्तमान परिवेश में यह संभव नहीं है। इसी बीच मध्यप्रदेश में नयी सरकार बनी और आचार्यजी के लिए कार्य करना और भी कठिन हो गया। सितंबर *१९६६ में जबलपुर में आचार्य वाजपेयी का अभिनन्दन समारोह मनाया गया,* जिसकी समिति में थे : डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० राजबली पाण्डेय, डा० सत्याचरण बराट, डा० कस्तूरचंद जैन और श्री गोविन्द प्रसाद पाठक।

इन सीमाओं में वाजपेयीजी ने प्रयत्न किया कि विक्रम विश्वविद्यालय का शैक्षणिक विकास हो और इसके लिए वे योग्यतम व्यक्तियों को आमंत्रित करना चाहते थे। उन्होंने डा० रामविलास शर्मा से अनुरोध किया था कि वे अंग्रेजी प्रोफेसर का पद स्वीकार कर लें पर परिस्थितियों के कारण उनके लिए आगरा छोड़ना संभव नहीं हुआ। उज्जैन के अपने कार्यकाल में आचार्यजी ने भारतीय हिंदी परिषद का अधिवेशन आमंत्रित किया और इसी अवसर पर मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद(म. प्र. की साहित्य अकादमी) के तत्वावधान में भारतीय भाषाओं में कृष्ण-काव्य परम्परा व्याख्यानमाला का शुभारम्भ हुआ। उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि विभिन्न क्षेत्रों के विद्वान उज्जैन आएं और उनका लाभ विश्वविद्यालय को प्राप्त हो। पर वाजपेयीजी को अधिक कर सकने का अवसर ही नहीं मिला और २१ अगस्त १९६७ को उनका देहावसान हो गया। कुलपति-सम्बन्धी अपनी

अस्त-व्यस्तता, कई प्रकार के मानसिक तनाव तथा अस्वस्थता के बावजूद आचार्य-जी का लिखना-पढ़ना जारी रहा। वे स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्यापन कार्य करते थे। उज्जैन में ही उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र, विशेषतया रस-सिद्धान्त पर नये सिरे से विचार किया। इसी बीच सुमित्रानन्दन पंत पर कुछ नये निबन्ध लिखे गए। नयी कविता पर उनकी लेखमाला चार खण्डों में 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई और इसका अंतिम खण्ड 'निष्कर्ष और समापन' धर्मयुग के २१ अगस्त १६६७ के अंक में प्रकाशित हुआ। उसे हाथ में लेकर वाजपेयीजी ने कहा था : 'निष्कर्ष और समापन'। यही उनका अन्तिम लेख है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी मध्यवर्गीय परिवार मे जन्मे थे और अपने पिता को खो देने के बाद उन्हें जीवन संघर्ष से गुजरना पड़ा। १६२६ में काशी विश्व-विद्यालय से एम. ए. हिन्दी परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त वे प्रयाग, काशी, गोरखपुर में कार्यरत रहे। जब १६४१ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति हुई तब उनकी चिन्ताएं कुछ कम हुईं। वाजपेयीजी का विवाह १६२५ जनवरी में हरदोई में श्री रामनारायण मिश्र की पुत्री सावित्री मिश्र से हुआ जिन्होंने आजीवन अपने पति का, हर संघर्ष में साथ दिया। वाजपेयीजी के देहावसान के लगभग सात वर्षों बाद नवंबर १६७४ में उनका निधन हुआ। आचार्यजी के दो पुत्र और एक पुत्री हैं। ज्येष्ठ पुत्र डा० स्वस्ति कुमार वाजपेयी (१६३६ में जन्म) मध्यप्रदेश शासन के चिकित्सा विभाग में सर्जन है। उनका विवाह भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति डा० बाबूराम मिश्र की पुत्री उषा मिश्र से हुआ। दूसरे पुत्र डा० सूनृतकुमार वाजपेयी (जन्म १६४५) मनोविज्ञान में पी-एच० डी हैं और इस समय जबलपुर में आचार्य प्रिन्टर्स नाम से अपनी संस्था चला रहे हैं। वाजपेयीजी की एकमात्र पुत्री पद्मा (जन्म १६४१) प्रथम श्रेणी की छात्रा रही हैं और उनका विवाह प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध हिन्दी अध्यापक पं० उमाशंकर शुक्ल के चिरंजीव से हुआ है। सयुक्त परिवार का दायित्व निभाते हुए आचार्यजी ने अपने सम्बन्धियों आदि की शिक्षा में विशेष रुचि ली। उनके एक भांजे डा० दिनेश मिश्र मध्यप्रदेश स्वास्थ्य विभाग में हैं और दूसरे डा० उमेश मिश्र पी. पी. एन. कालेज, कानपुर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष। इन दोनों की शिक्षा आचार्य वाजपेयी के निर्देशन में ही सम्पन्न हुई।

आचार्य वाजपेयी के शिष्यों की संख्या काफी है। एक बार कैम्ब्रिज के हिन्दी प्रोफेसर डा० मैक्ग्रेगर ने वाजपेयीजी से पूछा कि आपके कितने बच्चे है तो वाजपेयीजी ने एक क्षण रुककर कहा मुझे सोच लेने दीजिए क्योंकि वे काश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हैं। वाजपेयीजी की शिष्य-वत्सलता और उनकी सहज उदारता की अनेक कहानियां हैं और जो उनके सम्पर्क में आए हैं वे जानते हैं कि वे कितने निश्छल व्यक्ति थे (प्रज्ञा : हीरक जयंती विशेषांक : 'काशी से मगहर

तक' लेख)। उनके पास से कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटा। सागर छोड़ रहे थे तो उनके अधीनस्थ कार्यरत लिपिक ने कहा : 'नाथ, मोहि दीजै कछु चीन्हा' और उन्होंने अपनी अंगूठी उतारकर उसे दे दी। वाजपेयीजी को यात्रा करने का शौक था, पर अकेले नहीं। प्रायः वे अपने निजी सचिव के साथ चलते जो कोई ऐसा छात्र होता जिसे वे आर्थिक सहायता देते थे। विभाग की यात्राएं चलतीं तो आचार्यजी सबका ध्यान रखते, काश्मीर की ठंड में रात को अपना कम्बल दूसरों को ओढ़ा देते। उनकी दानशीलता ऐसी कि जो चाहे मांग ले, ले जाय, वहां नकार नहीं था। न जाने कितने निर्धन छात्र उनकी सहायता से पढ़-लिख गए। घर में एक बड़ा कमरा ऐसे ही लोगों से भरा रहता जिसे लोग प्यार से धर्मशाला कहते। वाजपेयी जी कार में चलते तो रास्ते भर सबको बटोरते चलते। एक बार उन्होंने अपने मित्र पं० परमानन्द वाजपेयी (कवि-समीक्षक अशोक वाजपेयी के पिता) से कहा कि कोई बड़ी कार दिलवा दो, यह छोटी पड़ती है। परमानन्दजी ने कहा आपके लिए तो कम से कम एक बस चाहिए जिसे चाहें बिठा लें। अपनी उदारता के कारण वाजपेयीजी प्रायः रिक्तहस्त रहते पर उनकी दानशीलता में कहीं कोई कमी नहीं आई, जीवन के अन्तिम क्षणों तक। किताबों के अतिरिक्त वे कोई संपत्ति नहीं छोड़ गए, यही उनकी उदार दानशीलता का प्रमाण।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपनी प्रतिभा और सहज स्वभाव के कारण विद्यार्थी जीवन में ही श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, डा० श्यामसुन्दर दास, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध आदि का स्नेह पाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और प्रेमचन्द्र को लेकर उन्होंने तीखी आलोचनाएं लिखीं थीं पर जब पुनर्मूल्यांकन का अवसर आया तो उन दोनों के कृतित्व को स्वीकृति दी और अपने जीवन में उनकी प्रशंसा भी प्राप्त की थी। उन्होंने लिखा कि : 'आचार्य शुक्ल हिन्दी आलोचना के लिए युग-प्रवर्तक कार्य कर गए हैं' (हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० ५६)। इसी प्रकार प्रेमचन्द के विषय में उनका कथन है : 'हम हिन्दी उपन्यासों के उस नये युग में पहुंचते हैं जिसका शिलान्यास प्रेमचन्द ने किया' (प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन, पृ० ४)। स्वयं निरालाजी ने लिखा है कि प्रेमचन्द ने वाजपेयीजी की आलोचना की प्रशंसा की थी (चाबुक, पृ० ४०)। निरालाजी से आचार्य वाजपेयी का पत्र-व्यवहार १९२७ से है जब वे एम० ए० कक्षा के विद्यार्थी थे। ७-९-१९२७ को अपने प्रथम पत्र में लिखा कि 'कवि की कृति से परिचित होना ही कवि से सच्चा परिचय प्राप्त करना है। इस विचार से मैं कहूं तो कह सकता हूं कि आपका-मेरा परिचय विगत पांच वर्षों से है, और वह परिचय भी बरायनाम नहीं प्रत्युत घनिष्ट तथा स्थायी है।' अपने समानधर्मा साहित्यकारों से आचार्य वाजपेयी के मधुर सम्बन्ध रहे हैं और उन्होंने वैचारिक मतभेद के बावजूद निजी सम्बन्धों में तुरशी नहीं आने दी। एक ऊंचाई पर पहुंच-

कर कई बार हम मसीहाई मुद्रा में आ जाते हैं और फतवे देने लगते हैं। पर आचार्यजी ने इस बात का प्रयत्न किया कि वे नवलेखन से गुजरते रहें और अपनी कतिपय धारणाओं के बावजूद उन्होंने जीवन के अन्तिम दौर में नयी कविता को अपनी सहानुभूति दी, जबकि इसके पूर्व प्रयोगवाद के विषय में वे तीखी टिप्पणियां कर चुके थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आचार्य वाजपेयी के बहुत समीपी थे और वे प्रायः सागर आते थे। इसी प्रकार अन्य साहित्यकारों से भी वाजपेयीजी के निकट सम्बन्ध रहे हैं।

आचार्य वाजपेयी की जीवन-यात्रा से गुजरने पर उनका एक उदार व्यक्तित्व उभरता है जिसमें अध्यापक-साहित्यकार का सम्मिलित योग है। अपने छात्रों को पढ़ाने में वे सुख मानते थे और विद्यादान को अपना कर्तव्य। कहा जा सकता है कि रहन-सहन में उनमें एक आभिजात्य झलकता था—रेशमी खादी का कुर्ता, पान के साथ बनारसी जर्दे का शौक, लिखने के लिए माउंट ब्लैक और प्रथम श्रेणी में यात्रा। यह आभिजात्य प्रदर्शन-परिचालित नहीं था, किसी सीमा तक यह उनकी रूमानी दृष्टि से भी जुड़ा था, लगभग सहज हो गया था। उनकी रचनाशीलता को भी इस आभिजात्य ने प्रभावित किया, विशेषतया उनके सुगठित भाषा-संस्कारों में इसे देखा जा सकता है। अपने विचारों में वे कहीं राष्ट्रीयता और समाजवाद के मिलनबिंदु पर उपस्थित हैं। 'आधुनिक साहित्य' का समर्पण करते हुए उन्होंने लिखा कि 'आचार्य नरेन्द्रदेवजी को जिनके व्यक्तित्व, चरित्र और पांडित्य के प्रति मेरे मन में सदैव श्रद्धा रही है।' इस प्रकार आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के व्यक्तित्व की कई इकाइयां हैं—गम्भीर समीक्षक, समर्थ अध्यापक, निर्भय सम्पादक और एक उदारमना व्यक्तित्व।

२. रचना-यात्रा और कृतित्व

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जब एम० ए हिन्दी के विद्यार्थी थे तभी उन्होंने लिखना-छपाना आरम्भ कर दिया था, इससे उनकी निसर्गजात प्रतिभा का संकेत मिलता है। १९२७ से वे माधुरी, विशाल भारत जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे। वाजपेयीजी ने अपनी रचनायात्रा की शुरुआत कविता से की, पर क्रमशः वे समीक्षा ी ओर मुड़ गए। उनकी कविताओं से गुजरने पर पता चलता है कि उनमें तत्कालीन आदर्शवादिता, राष्ट्रीय भावना के साथ कवि की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि भी मौजूद है। दो कविताओं के संक्षिप्त अंश हैं :

सिंधु-संतरण के अभिलाषी / साहसमय सच्चे सन्यासी
हिचकन दिखती कैसी ? / आह, मत विचलित हो आधी राह।
आह तीर की मधुर कल्पना / सोचो क्या भी निरी कल्पना ?
नहीं नहीं थी सच्ची चाह / मत विचलित हो आधी राह।

(दासता-सिन्धु)

मनोरंजिनी कली खिली थी / विश्ववाटिका में कमनीय
रानी-श्री श्रीमती छबीली / मुकुलित शुचि शोभा में स्वीय।
खग-कुल गौरव-कथा सुनाता / विनत व्यजनरत मदिर समीर
बांदी वल्लरियां चरणों में / सेवा की करती तदबीर। (कली)

आचार्य वाजपेयी का धारावाहिक लेखन उस समय से गति प्राप्त करता है जब वे सितबर १९३० में भारत पत्र के सम्पादक होकर प्रयाग आए। सामाजिक-राजनीतिक सम्पादकीय, अग्रलेख, टिप्पणियों के अतिरिक्त इसी पत्र के माध्यम से उन्होंने अपने साहित्य-समीक्षक रूप को निरन्तर सक्रिय करने का प्रयत्न किया। छायावाद के विषय में लिखे गए उनके निबंध 'हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी' में संकलित हैं। स्थिति यह है कि प्रेमचंद वाली पुस्तक के अतिरिक्त आचार्यजी की प्रायः सभी कृतियां निबंधों का संकलन हैं और इससे अपेक्षाकृत उनके अधिक स्वच्छन्द व्यक्तित्व का आभास मिलता है। सम्पूर्ण पुस्तक गढ़ते समय हमारे मन में एक रूपरेखा रहती है और हम उसी की सीमाओं में आगे बढ़ते हैं। पर निबध में हम अधिक आजादी ले सकते हैं और वाजपेयीजी अथवा आचार्य हजारीप्रसाद

द्विवेदी की सर्जनात्मक समीक्षा के लिए निबंध निश्चय ही एक सही माध्यम है। पर यह भी सच है कि इन सबसे मिलकर उनकी प्रमुख कृतियों का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व बनता है।

आचार्य वाजपेयीजी का लेखन 'भारत' पत्र के माध्यम से विकसित हुआ और अध्यापन कार्य करते हुए उन्होंने उसे प्रौढता पर पहुंचाया। छायावाद के वे प्रवल समर्थक हैं, पर इसे उनकी विकासमान दृष्टि का प्रमाण मानना होगा कि अंतिम समय में वे नयी कविता पर लिख रहे थे। आचार्यजी के अध्ययन का पाट काफी चौड़ा है। उन्होंने सूरसागर और रामचरितमानस का सम्पादन किया। सूर पर उनकी स्वतंत्र पुस्तक 'महाकवि सूरदास' भी उपलब्ध है। तुलसी से सम्बद्ध उनके कुछ महत्त्वपूर्ण निबंध हैं जो यदि पुस्तकाकार प्रकाशित होते तो वाजपेयीजी की मौलिक चिन्तनशीलता का नया परिचय मिलता। डा० रामचन्द्र तिवारी (आचार्य हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर) से प्राप्त सूचना के अनुसार आचार्य वाजपेयी ने तुलसी से सम्बद्ध जो निबंध लिखे उनमें से कुछ गीता प्रेस से प्रकाशित हुए थे। रामचरितमानस के व्याकरण वाला निबंध 'पाठ के सम्बन्ध में निवेदन' शीर्षक से गीता प्रेस के मानस विशेषांक के प्रथम अंक में प्रकाशित हुआ। तुलसी के अध्ययन में उनका एक अन्य विचारोत्तेजक निबंध है। डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव और डॉ० विश्वनाथ तिवारी (गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने भी इसकी पुष्टि की है।

आचार्यजी में साहित्य के प्रति आरंभ से ही एक जिज्ञासा भाव था और काशी, प्रयाग के परिवेश में उसे नये आयाम मिले। निरालाजी को लिखे गए कुछ पत्रों में वाजपेयीजी की साहित्यिक दृष्टि का आभास मिलता है, विशेषतया इसलिए भी क्योंकि उस समय उन्होंने शोधकार्य आरम्भ ही किया था। 'थीम ऑफ़ लव इन हिन्दी पोयट्री' पर शोध करते हुए उन्होंने १ अगस्त १९२९ के अपने पत्र मे निरालाजी को लिखा : 'क्रिश्चियन फ़िलासफ़ी' में गाड इज़ लव या लव इज़ गाड का सामंजस्य सूफ़ियों के 'इश्के बुतां' से हो जाता है और वैष्णव साहित्य में 'प्रेम एव परोधर्मं' ढाई अच्छर प्रेम का भी उसी तत्त्व तक पहुंचते हैं पर पता नहीं उपनिषदों के शुद्ध ज्ञान (ब्रह्म विद्या) में जो निवृत्तिमूलक है, 'प्रेम' को कुछ स्थान है या नहीं, शायद नहीं है' (रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना, खंड ३, पृ० १८४)। २१-४-१९२९ के पत्र में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं जिससे वाजपेयीजी की अध्ययनशीलता का परिचय मिलता है : रोमान्टिसिज्म, क्लासिसिज्म, आइडियालिज्म, रियलिज्म, सिम्बालिज्म, शेक्सपियर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, टेनिसन आदि।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के तुलसी सम्बन्धी लेख तथा 'भारत' पत्र की पर्याप्त सामग्री, विशेषतया उनकी सामाजिक-राजनीतिक टिप्पणियां अभी भी

अप्रकाशित हैं। यदि किसी प्रकार यह सामग्री प्रकाश में आ सकती तो आचार्यजी का एक नया रूप उजागर हो सकता है। वाजपेयीजी की प्रकाशित पुस्तकें हैं: जयशंकर प्रसाद (१९३९-४०), हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी (१९४२), आधुनिक साहित्य (१९५०), महाकवि सूरदास (१९५३), प्रेमचन्द : एक विवेचन (१९५४), नया साहित्य : नये प्रश्न (१९५५), राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं (१९६१), कवि निराला (१९६५), राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध (१९६५) प्रकीर्णिका (१९६५)। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास तथा आधुनिक काव्य : रचना और विचार ऐसी पुस्तकें हैं जिनकी सामग्री दूसरे रूप में पहले प्रकाशित हो चुकी थी। इतिहास भूमिका के तौर पर निकल चुका था और दूसरी पुस्तक में पूर्व-प्रकाशित निबंध हैं। १९६७ में आचार्य वाजपेयी का निधन हुआ और उनकी मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तकें हैं : नयी कविता (१९७६), रस सिद्धान्त : नये संदर्भ (१९७७), आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा (१९७८) कवि सुमित्रानन्दन पंत (१९७६), रीति और शैली (१९७९) आदि। इनमें कुछ अप्रकाशित सामग्री है और कुछ पूर्व प्रकाशित। इनमें से अधिकांश का सम्पादन डॉ० शिवकुमार मिश्र ने किया है। सबको मिलाकर पुस्तक को एक नया व्यक्तित्व देने का प्रयत्न किया गया है।

जयशंकर प्रसाद (१९३९) वाजपेयीजी की आरंभिक कृति है। इस समय इसका जो परिवर्द्धित संस्करण उपलब्ध है, उसमें सोलह पृष्ठों की लंबी भूमिका के अतिरिक्त बारह निबंध हैं। समय-समय पर लिखे गए इन निबंधों में प्रसाद के साहित्यिक व्यक्तित्त्व के आकलन का प्रयत्न किया गया है : व्यक्ति की झलक से लेकर कुछ प्रमुख नाटक तक। आचार्यजी ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि 'उस समय मैं साहित्य क्षेत्र में आया ही आया था...।' इन आरंभिक निबंधों में एक युवा-समीक्षक की प्रतिभा और ऊर्जा के संकेत मिलते हैं। भूमिका के आरंभ में उन्होंने स्वयं अपनी समीक्षा शैली का परिचय देते हुए लिखा है कि 'मैं तो साहित्य में रचनाकार की अंतःप्रेरणा का अनुसंधान करने में ही व्यस्त हूं। इसी के साथ-साथ संक्षेप में बाह्य स्थितियों का दिग्दर्शन करा देना और उन पर रचनाकार की प्रतिक्रिया दिखा देना तथा अंत में उसकी कलात्मक चेष्टाओं का परिचय दे देना बस समझता हूं।' इसी आधार पर उन्होंने प्रसाद के व्यक्तित्व की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन किया है जिसे वे 'प्रसाद की साहित्यिक प्रगति को अपने ढंग से समझने की चेष्टा' कहते हैं। इस पुस्तक के निबंध उस समय लिखे गए जब छायावाद पर कई ओर से आक्रमण हो रहे थे, ऐसी स्थिति में वाजपेयीजी ने प्रसाद के माध्यम से उसके बचाव का प्रयत्न किया और उसे सही संदर्भ में प्रस्तुत किया। जो लोग छायावाद को संवेदना/भावुकता तक सीमित रखना चाहते थे, उन्हें उत्तर देते हुए वाजपेयीजी ने लिखा : 'प्रसादजी एक नये साहित्य-युग के

निर्माता ही नहीं हैं, एक नई विचार शैली और नव्य दर्शन के उद्भावक भी हैं। उनमें अपने युग की प्रगतिशीलता प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। यही नही, वे एक बड़ी हद तक भविष्यदृष्टा और आगम के विधायक भी हैं। सभी महान् साहित्यकारों की भांति उन्होंने अपने युग की प्रगतिशील शक्तियों को पहचाना और उन्हें अभिव्यक्ति दी।' (जयशंकर प्रसाद, भूमिका, पृ० २)

वाजपेयीजी की इस पुस्तक में प्रसाद के नाटकों पर कई निबंध हैं जिनमें नाटककार प्रसाद के व्यक्तित्व को रेखांकित किया गया है। इसे वे नाट्यकला का 'स्वतंत्र आधार' कहते हैं और उसके लिए हिन्दी के स्वतंत्र रंगमंच तक की मांग करते हैं (पृ० १२९)। वाजपेयीजी को भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का ज्ञान है और इस पीठिका पर वे प्रसाद की नाट्यकला का विवेचन करते हैं पर उनका मुख्य ध्यान नाटकों के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक परिवेश पर है। वे लिखते हैं : 'उनके सभी नाटक सांस्कृतिक हैं, वे देश की समृद्धि के प्रतिरूप हैं। उनमें केवल यथातथ्य चित्रण नहीं हैं, वे केवल इतिहास का चित्रण करने वाले नाटक नहीं हैं, उनका सांस्कृतिक पक्ष भी है। उनमें वर्तमान और भविष्य की छाया विद्यमान है (पृ० १५३)। इस प्रकार 'जयशंकर प्रसाद' नामक उनकी प्रथम पुस्तक छायावाद युग के यशस्वी रचनाकार का विवेचन करती है।

आचार्य वाजपेयीजी के समीक्षक-व्यक्तित्व को स्थापित करने वाली उनकी पुस्तक **हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी** (१९४२) है और स्वयं वे भी इसे अपनी प्रतिनिधि कृति मानते रहे हैं। इसके कुछ निबंध उस समय 'भारत' (प्रयाग) में प्रकाशित हुए थे जब आचार्यजी उस पत्र का सम्पादन (सितम्बर १९३० से नवंबर १९३२ तक) कर रहे थे। हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी आधुनिक साहित्य के साथ लगभग समानान्तर यात्रा है—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से लेकर जैनेन्द्रकुमार तक। 'विज्ञप्ति' नामक लंबी भूमिका में आचार्यजी ने अपने समीक्षा-सूत्र इस प्रकार बताए हैं : १. रचना में कवि की अन्तवृत्तियों (मानसिक) उत्कर्ष-अपकर्ष) का अध्ययन (अनालिसिस आफ़ द पोयटिक स्पिरिट)। २. रचना में कवि की मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता-विशालता (कलात्मक सौष्ठव) का अध्ययन (ऐस्थिटिक एप्रिशियेशन)। ३. रीतियों, शैलियों और रचना के बाह्यांगों का अध्ययन (स्टडी आफ़ टेकनीक)। ४. समय और समाज तथा उनकी प्रेरणाओं का अध्ययन। ५. कवि की व्यक्तिगत जीवन। और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन (मानस विश्लेषण)। ६. कवि के दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों आदि का अध्ययन। ७. काव्य के जीवन-सम्बन्धी सामंजस्य और सन्देश का अध्ययन। बीसवीं शताब्दी के निबंध १९३१-१९४० के बीच लिखे गए हैं और 'विज्ञप्ति' १९४२ में।

'विज्ञप्ति' शीर्षक लंबी भूमिका में वाजपेयी द्वारा आधुनिक साहित्य पर एक

विहंगम दृष्टि डालने का प्रयत्न किया गया है और कतिपय प्रमुख लेखकों पर संक्षिप्त टिप्पणियां भी की गई हैं जो पुस्तक में स्थान नहीं पा सके हैं। एक भारतीय आत्मा (श्री माखनलाल चतुर्वेदी) से लेकर अज्ञेय तथा रामविलास शर्मा तक। द्विवेदी युग के तीन प्रमुख लेखक--- मैथिलीशरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल और प्रेमचन्द एक प्रकार से तीन विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं कविता, समीक्षा और कथा-साहित्य। पर युग के मूल में प्रमुख प्रेरणा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की है जिन्होंने अपने सतेज व्यक्तित्व से उस प्रशस्त पीठिका का निर्माण किया जो किसी सृजन के लिए आवश्यक होती है। पर आचार्य वाजपेयीजी ने द्विवेदी युग की तुलना में छायावाद युग को कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से अधिक महत्त्व दिया है, इसीलिए वे उसकी कतिपय सीमाओं की ओर संकेत करते हैं जैसे आदर्शवादी दृष्टि। उनकी टिप्पणी है : 'द्विवेदी युग की बौद्धिकता और नीतिमत्ता सृजनात्मक मन के समस्त द्वारों का उद्घाटन न कर सकी, काव्य-विकास के बहुत-से कपाट अवरुद्ध ही रहे।' (विज्ञप्ति, पृ० ९)।

द्विवेदी युग और छायावाद युग पर तुलनात्मक दृष्टि डालते हुए वाजपेयीजी अपने समय के एक तीखे विवाद से गुजरते हैं जिसमें छायावाद का विरोध कई स्तरों पर किया जा रहा था। वाजपेयीजी ने आरोपों और आक्षेपों का उत्तर देने का प्रयत्न भी किया है। जैसे वे रवीन्द्रनाथ और जयशंकर प्रसाद में कुछ समानताएं पाते हैं, दोनों को 'बहुमुखी जीवन के कवि' रूप में देखते हैं। रहस्यवाद, पलायनवाद, ऐकान्तिकता, प्रेम प्रसंग आदि के जो आरोप छायावादी काव्य के आरंभिक दौर में लगाये गए, वाजपेयीजी ने उनका तार्किक उत्तर दिया। इसमें सन्देह नही कि वाजपेयीजी छायावाद पर हमला करने वालों से मोर्चा लेते हैं, इसे वे 'नादिरशाही ढंग का आक्रमण' कहते हैं। उन्होंने उस समय के दो प्रमुख युगों को अलगाते हुए उस परिवेश की ओर संकेत किया जिसमें उनका निर्माण हुआ : 'द्विवेदीकालीन राष्ट्रीयतावाद और छायावादी मानव ऐक्य की भावनाओं ने कैसी पृथक् काव्य-शैलियों को जन्म दिया इसका एक स्थूल परिचय मैथिलीशरण गुप्त, निराला और प्रसाद की देश-प्रेम-सम्बन्धी कविताओं का अध्ययन करने पर मिल जाता है।' (विज्ञप्ति, पृ० १५)। द्विवेदी युग, छायावाद युग से चलकर 'विज्ञप्ति' के अन्त में वाजपेयीजी नई रचनाशीलता का भी संकेत करते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि 'इन निबंधों में उस युग के साहित्य की समीक्षा का प्राथमिक प्रयास किया गया है।' पर वास्तव में छायावाद को समझने-समझाने में 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' की भूमिका ऐतिहासिक है।

हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी में विज्ञप्ति सहित कुल इक्कीस निबंध हैं जिनमें समकालीन प्रमुख रचनाकारों का विवेचन है : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, जगन्नाथदास रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,

प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, सूर्यं॰ ान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्रकुमार आदि। इस प्रकार हम आचार्य वाजपेयी को अपने समकालीन रचना संसार से गुजरते हुए देखते हैं। यहीं वे द्विवेदीयुगीन रचना और छायावाद युग का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि गुप्तजी (मैथिलीशरण गुप्त) की कविताओं में 'एक विनयपूर्ण सीधा-सादा आदर्शवाद जिसमें आरंभिक राष्ट्रीयता का मीठा-मीठा स्पन्दन है, कल्पना की ऊंची उड़ानों से रहित अनुभूति, द्वन्द्वरहित भाव और इकहरी अभिव्यक्ति है। इसमें किसी जीवन तत्त्व का वैषम्य, आलोड़न-विलोड़न, संशय और तज्जनित भावोत्कर्ष आयोजित नहीं है। सीधा रास्ता, सीधी समस्या और सीधा समाधान' (हि॰ सा॰ बीसवीं शताब्दी : श्री जयशंकर प्रसाद लेख)।

आधुनिक साहित्य (१९५०), आकार की दृष्टि से आचार्य वाजपेयी की सबसे बड़ी पुस्तक है। इसमें सात खण्ड हैं : काव्य, उपन्यास-कहानी, नाटक, गद्य, समीक्षा, साहित्य धाराएं मत और सिद्धान्त। कुल मिलाकर इसमें अड़तीस निबंध हैं जिससे आचार्य वाजपेयी के विस्तृत अध्ययन ा परिचय मिलता है। इसके पूर्व उनकी समीक्षा प्रायः कविता केन्द्रित रही है पर यहां वे प्रायः सभी विधाओं पर टिप्पणी करते हैं। 'आधुनिक साहित्य' की लंबी भूमिका इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि यहां वे अपने समय की रचनाशीलता को उसके सामाजिक संदर्भों में रखकर देखते हैं, पूर्ववर्ती साहित्य से उसे अलगाते हुए, उसकी पार्थक्य रेखाएं स्पष्ट करते हैं और तब उसका गहरा विश्लेषण करते हैं। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रथम चरण की चर्चा करते हुए वे लिखते है : 'उनमें अधिकतर साधारण श्रेणी के लोग थे जो गांवों से अभी-अभी आकर शहरों में रहने लगे थे। वे सभी सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी थे। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार करना चाहते थे···नैतिक और भौतिक दोनों। इस कार्य के लिए उनमें पूरा आत्मविश्वास और लगन थी' (आधुनिक साहित्य : भूमिका, पृ॰ १०-११)। इस संदर्भ में वे विशेष रूप से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का उल्लेख करते हुए कहते हैं : 'विचारों के क्षेत्र में नई और बहुमुखी सामग्री एकत्र करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है, जिन्होंने हिन्दी के लिए भाषा सम्बन्धी एक नया प्रतिमान भी प्रस्तुत किया है। नए विचार और नई भाषा, नया शरीर और नया पोशाक, दोनों ही नई हिंदी को द्विवेदीजी की देन हैं। इसी कारण वे नई हिन्दी के प्रथम और युग प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं' (आ॰ सा॰, भूमिका पृ॰ १३)।

द्विवेदी युग की प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए आचार्य वाजपेयी उसमें युग की नई चेतना की आरम्भिक स्थिति देखते हैं। इसे वे एक प्रकार का संक्रान्ति-काल कहते हैं जहां 'नए युग का काव्य-साहित्य यद्यपि नये निर्माण में लगा था, पर वह पुरानी व्यवस्था को पूरी तरह बदल न पाया।' द्विवेदीयुगीन काव्य अपनी

सदाशयता के बावजूद इन्हीं सीमारेखाओं में बधा है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द अधिक यथार्थ भूमि पर स्थित हैं और वाजपेयीजी ने उन्हें 'आस्थावान और प्रगतिशील' लेखक कहा है। इसी प्रकार उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को 'एक सामाजिक द्रष्टा और विचारक' कहा है। आचार्य वाजपेयी अपनी भूमिका में, जिसे 'नव्यतर प्रगति' कहते हैं, उसकी शुरुआत १९२० के आस-पास मानते हैं। इस सिलसिले में वे पीठिका के तौर पर प्रथम महायुद्ध, महात्मा गांधी तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के उतार-चढ़ाव और नयी चेतना आदि का विशेष उल्लेख करते हैं। छायावाद के पूर्वाभास रूप में नवीन प्रगीत रूपों की चर्चा करते हुए वे छायावादी काव्य पर किंचित विस्तार से टिप्पणी करते हैं और पूर्ववर्ती काव्यधारा से उसकी पार्थक्य रेखाएं भी स्पष्ट करना चाहते हैं। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत के काव्य पर विचार करते हुए वाजपेयीजी मुख्य रूप से उन बिन्दुओं का संकेत करते हैं जो उन्हें स्वतन्त्र व्यक्तित्व देते हैं और इन्हें वे 'नयी चेतना के वाहक कवि' के रूप में देखते हैं।

सन् १९३५ के आस-पास जो काव्य-जगत् बदलता है उसके कई रूपों का उल्लेख वाजपेयीजी ने किया है : गीत सृष्टि में महादेवी अथवा बच्चन, प्रयोगवादी कवि, सामाजिक प्रगतिवादी। इन्हीं के साथ पुरानी पीढ़ी के कवि भी रचनारत थे और आख्यानक काव्य भी लिखे जा रहे थे। यहां पर कामायनी की चर्चा विस्तार से हुई है। कविता के साथ गद्य की अन्य विधाएं : नाटक, उपन्यास, कहानी आदि पर भी भूमिका में विचार किया गया है जिसमें प्रमचंद से लेकर अज्ञेय आदि तक को लिया गया है। वाजपेयीजी स्वीकारते हैं कि 'सन् १९२० के पश्चात् प्रेमचंद की रचनाओं में और भी प्रौढ़ता आयी और भारतीय जीवन के विस्तृत पक्षों का चित्रण उनमें किया गया' (भूमिका : पृ० ४१)। भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र के बाद वाजपेयीजी उपन्यास क्षेत्र की नवीनतम त्रयी का उल्लेख करते हैं : यशपाल, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी। यह स्वीकारते हुए भी कि 'यशपालजी का अनुभव क्षेत्र वड़ा है और वे विशाल और निर्बाध जीवन परि-स्थितियों का चित्रण करने की क्षमता रखते हैं' वाजपेयीजी उनके सैद्धान्तिक आग्रहों को कलात्मक उत्कर्ष में बाधा मानते हैं। इसी प्रकार वे इलाचन्द्र जोशी के मनोवैज्ञानिक यथार्थ की आलोचना करते हैं। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' को इन दोनों का मध्यवर्ती मानते हुए वे 'शेखर : एक जीवनी' को अधिक साहित्यिक तथ्यपूर्ण कृति मानते है।

भूमिका के समापन अंश में आचार्य वाजपेयी साहित्य की नव्यतम प्रगति के विषय में कुछ चिन्ताएं भी व्यक्त करते हैं जैसे पश्चिमी यथार्थवाद और समीक्षा के गहरे दबाव। वे लिखते हैं : 'इस नए यथार्थवाद के जन्म लेने के पहले हमारे साहित्य के सम्मुख केवल दूसरा लक्ष्य था—सद्भावना या रस की सृष्टि का। परन्तु आज

हमारे सम्मुख साहित्य की पहली और तीसरी स्थितियां भी उत्पन्न हो गई हैं…' (भूमिका : पृ० ४७)। वे साहित्य पर विज्ञान के दबावों की भी चर्चा करते हैं और इस बात पर खेद व्यक्त करते हैं कि मध्यवर्गीय मानसिकता साहित्य को अधोगति की ओर ले जा रही है। यहां वाजपेयीजी का राष्ट्रवादी रूप मुखर हुआ है; वे साहित्य के देशज चरित्र के पक्षधर हैं और कहते है कि 'साहित्य और जीवन के रचनात्मक पक्षों और अनुभूतियों को लेकर ही श्रेष्ठ साहित्य की सृष्टि हो सकती है—और वह भी ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो स्वतः रचनात्मक लक्ष्य रखते हों और साथ ही जिन्हें विज्ञान की नही, जीवन की जानकारी हो, जीवन के प्रति ज्वलन्त आस्था हो।'

'आधुनिक साहित्य' में वाजपेयीजी के १९३० से १९४२ तक के समीक्षात्मक निबन्ध सकलित है जिन्हें सात खण्डों में विभाजित किया गया है : काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, गद्य, समीक्षा, साहित्यधाराएं, मत और सिद्धान्त। काव्य खण्ड में कामायनी से लेकर नई कविता तक का विवेचन है और उपन्यास-कहानी खण्ड में प्रेमचद से लेकर नई कहानी तक। इससे आचार्य वाजपेयी की समानान्तर समीक्षा यात्रा का परिचय मिलता है जिसमें उन्होंने नयी रचनाशीलता से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया है। नाटक खण्ड में प्रसाद के नाटकों की चर्चा के अतिरिक्त भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्य चिन्तन के विषय में कुछ सैद्धान्तिक प्रश्न भी उठाए गए है। समीक्षा खण्ड में छायावादी काव्य दृष्टि से लेकर नई समीक्षा प्रणाली तक पर विचार किया है। साहित्यधाराएं खण्ड में मुख्य रूप में छायावाद, प्रगतिवाद का विवेचन है। मत और सिद्धान्त में वाजपेयीजी ने भारतीय काव्य मत, ध्वनि और रस, आदर्श और यथार्थ जैसे सैद्धान्तिक प्रश्नों पर विचार किया है। इस प्रकार लम्बीभू मिका के अतिरिक्त 'आधुनिक साहित्य' के निबंध सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार के विषयों से सम्बद्ध हैं।

'आधुनिक साहित्य' के निबन्ध आचार्य वाजपेयी के विस्तृत अध्ययन और अपेक्षाकृत चौड़े पाट का परिचय देते हैं। एक ओर उनका प्रयत्न कि साहित्य की प्रवाहमान नयी धारा से अपना सम्पर्क बनाए रखें, दूसरी ओर यह भी कि रचना के सिलसिले में जो मुख्य सैद्धान्तिक-वैचारिक प्रश्न उठते हैं, उनकी चर्चा भी आज के सन्दर्भ में हो। आखिर किसी मत अथवा सिद्धान्त की प्रासंगिकता की परीक्षा करना भी समीक्षक का नैतिक दायित्व है। इन निबंधों से गुजरने पर पता चलता है कि वाजपेयीजी ने भारतीय साहित्यशास्त्र के साथ पाश्चात्य सिद्धान्तो का भी गहरा अध्ययन किया है। वे भारतीय काव्यमत, ध्वनि-रस आदि की विवेचना करते हैं और आज के संदर्भ में उसकी उपयोगिता पर विचार करते हैं। पाश्चात्य काव्यमत, अभिव्यंजनावाद, स्वच्छंदतावाद और परम्परा में उन्होंने पश्चिम की साहित्यिक विचारधाराओं का उल्लेख किया है। यह सब केवल सामान्य जानकारी

पर निर्भर नहीं है, बल्कि आचार्य वाजपेयी के गहन अध्ययन-मनन का प्रमाण है। क्रोचे को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कुछ प्रश्न उठाए थे, उसी क्रम में आचार्य वाजपेयी अपने निबंध 'अभिव्यंजनावाद' में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं : 'क्रोचे की दृष्टि में जीवन-सम्बन्धी और काव्य-सम्बन्धी अनुभूति दो पृथक् वस्तुएं नहीं हैं। जीवन की अनुभूतियां ही काव्य-अनुभूति का स्वरूप धारण करती हैं। जिस कवि की जीवनानुभूति जितनी विशद और तीव्र होगी, उसकी काव्यरचना भी उतनी ही प्रशस्त और मार्मिक होने की संभावना रखेगी। अतएव यह कहना संगत नहीं कि क्रोचे के मत में काव्य और जीवन का घनिष्ट संबंध प्रदर्शित नहीं है' (आधुनिक साहित्य : अभिव्यंजनावाद)। वास्तव में 'आधुनिक साहित्य' और 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' वाजपेयीजी की प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में स्वीकार की जाती है।

आचार्य वाजपेयीजी के लेखन में निबंधों की प्रधानता है जिन्हें उन्होंने पुस्तकों का रूप दिया है। नया साहित्य : नये प्रश्न (१९५५), राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं (१९६१), राष्ट्रीय साहित्य (१९६५), प्रकीर्णिका (१९६५), कवि सुमित्रानंदन पंत (१९७६), नयी कविता (१९७६), रस सिद्धान्त (१९७७), हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग (१९७८), आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा (१९७८), रीति और शैली (१९७९) ऐसी ही रचनाएं हैं। १९७६ के बाद की प्रकाशित पुस्तकों में उनके पुराने-नये निबंध संकलित हैं जिन्हें एक स्वरूप देने का प्रयत्न किया गया है। समय-समय पर लिखे गए इन निबंधों से ज्ञात होता है कि वाजपेयीजी ने हिन्दी-रचना की लगभग सभी दिशाओं का संस्पर्श करने का प्रयत्न किया है। अपने समय की रचनाशीलता के विषय में उन्होने अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं। 'नया साहित्य : नये प्रश्न' में उनका एक निबन्ध है : समीक्षा-सम्बन्धी मेरी मान्यता। यहां उन्होंने अपनी धारणाओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है जिससे ज्ञात होता है कि वे भारतीय साहित्यशास्त्र के जीवन्त तत्वो का उपयोग आज के सन्दर्भ में करना चाहते हैं। उनका कथन है : 'मेरे विचार में विभिन्न राष्ट्रों और जातियों का साहित्यिक विकास बहुत कुछ स्वतंत्र रूप में होता आया है और प्रत्येक देश की सांस्कृतिक स्थिति अपनी स्वतंत्र रूप सत्ता रखती है। भारतीय साहित्य हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की उपज है, अतएव उस साहित्य के मानदण्ड भी यथासंभव राष्ट्रीय ही होने चाहिए। साहित्य-सम्बन्धी भारतीय परम्परा अत्यंत समृद्ध रही है और उसी समृद्धि के अनुरूप हमारे साहित्यिक सिद्धान्त भी रचे गए हैं। अतएव जब हम रचना के क्षेत्र में अपनी इयत्ता रखते हैं तब सैद्धान्तिक चिन्तन में भी हमें अपनी इकाई रखनी होगी।' (नया साहित्य : नये प्रश्न : समीक्षा-सम्बन्धी मेरी मान्यता)।

आचार्य वाजपेयीजी ने अपने निबंधों में एक क्रम स्थापित करने के लिए प्रायः

अपनी पुस्तकों की लंबी भूमिकाएं लिखकर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। 'नया साहित्य : नये प्रश्न' की लंबी भूमिका 'निकष' में उन्होंने अपनी पिछली पुस्तकों का उल्लेख करते हुए बताया है कि वे किस प्रकार अपनी सीमाओं में विस्तार करते रहे हैं। छायावाद से अपनी समीक्षा-यात्रा की शुरुआत करके वाजपेयीजी नये साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों तक आते हैं। उन्होंने १९५५ में जो टिप्पणी की थी, वह काफी कठोर कही गई थी, पर आज उसकी प्रासंगिकता प्रतीत होती है : 'प्रयोगवाद हिन्दी में बैठे-ठाले का धंधा बनकर आया था। प्रयोक्ताओं के पास न तो काव्य-सम्बन्धी कोई कौशल था और न किसी प्रकार की कथनीय वस्तु थी। धीरे-धीरे इस मजाक में भी सच्चाई जान पड़ने लगी और कुछ लोग इस अर्थहीन वस्तु में भी एक नये 'वाद' की संभावना देखने लगे। क्रमशः यह भाषा-सम्बन्धी बीहड़ प्रयोगों का अड्डा बन गया जिससे पाठकों को भी थोड़ी बहुत दिलचस्पी होने लगी। आगे चलकर टी० एस० इलियट की शैली में आधुनिक जीवन के खोखलेपन का परिचय कराया जाने लगा। यह वाद हिन्दी में आरम्भ से ही मध्य-वर्ग के हार खाये और फिर भी शौकीन तबियत वाले व्यक्तियों के हाथ में रहा' (निकष : पृ० २१)। वास्तव में वाजपेयीजी रचना की सहज देशज भूमि का समर्थन करते हैं, और बराबर 'जागृत काव्य-विवेक' की मांग करते हैं।

१९६१ में आचार्य वाजपेयी की पुस्तक 'राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं' प्रकाशित हुई। यह वास्तव में उनकी केरल यात्रा के संस्मरण हैं जो उन्होंने भारत शासन के निमंत्रण पर १९५९ में की थी। इस पुस्तव में यात्रा-सम्बन्धी विवरण संक्षेप में ही है, पर उन भाषणों की चर्चा अधिक है जो उन्होंने अपनी इस दक्षिण यात्रा में विभिन्न स्थानों पर दिये थे। इस माध्यम से वाजपेयीजी ने राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाए हैं और उन पर विचार किया है। हिन्दी को लेकर दक्षिण में कुछ शंकाएं हैं और स्थिति यह है कि दुर्भाग्य से इसे राजनीति से जोड़ दिया गया है। वाजपेयीजी को अपनी दक्षिण यात्रा में यह एहसास है कि भाषा का प्रश्न वहां कितना जटिल बना दिया गया है, जबकि इसकी जरूरत नही। भारत की सभी भाषाएं अपना महत्त्व रखती हैं और उनकी समृद्ध रचना-परम्परा है। ऐसी स्थिति में तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता। सवाल यह है कि भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश को, जहां अनेक भाषाएं हैं, एक सम्पर्क भाषा चाहिए ही और वह अधिसंख्यक समाज की भाषा होने के कारण हिन्दी ही हो सकती है। जो लोग अंग्रेजी की वकालत सम्पर्क भाषा के रूप में करते हैं, वे मानसिक दासता का परिचय तो देते ही हैं, यह भी भूल जाते हैं कि भारत का वृहत्तर समाज अपनी ही भाषा में बोलता है, विदेशी भाषा में नहीं। आचार्य वाजपेयी 'हिन्दी का भ्रामक विरोध' नामक अपने निबंध में कहते है : 'हिन्दी के बोलने वालों का किसी भाषा से विरोध नहीं है। हिन्दी का अन्य भाषाओं से एक सजातीय सम्बन्ध है। मेरा

केवल इतना ही कहना है कि यह कार्य गांधीजी ने प्रारम्भ किया था। उन्होंने राष्ट्रचेतना से प्रभावित होकर हिन्दी के ऊपर जोर दिया। उस स्थिति में राष्ट्र की एकता के लिए यह कार्य चलाया गया था' (राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं, पृ० ६२)।

प्राय: वाजपेयीजी को समीक्षक रूप तक प्रस्तुत कर दिया जाता है, वह भी अकादमिक ढंग से, पर सागर विश्वविद्यालय ने स्नातकोत्तर विद्यार्थियों और शोध छात्रों के रूप में पहल की कि उत्तर-दक्षिण के बीच सारस्वत संवाद की सही प्रक्रिया बने। स्वयं आचार्य वाजपेयी ने इस दिशा में नेतृत्व किया। वे भारतीय संस्कृति और साहित्य की मूलभूत एकता में विश्वास करते है। इसे ध्यान में रखकर उन्होंने दक्षिणयात्रा के दौरान मन्दिरों का विशेष उल्लेख किया है। वे देव-देवी प्रतिमाएं देश में सर्वत्र समान हैं और हमारी सांस्कृतिक एकता की प्रतीक हैं। 'भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व' नामक अपने भाषण में उन्होंने कहा है : 'जहां तक हिन्दी के प्रचार का प्रश्न है, अपना देश बड़ा समन्वयप्रिय देश है। अन्य देशों से हिन्दुस्तान की एक विशेषता यही है कि यह बहुविध विचारधाराओं, विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का समन्वय करता है।' (राष्ट्रभाषा की समस्याएं : भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व)। आचार्य वाजपेयी ने केरल में १९५९ में कई भाषण दिए – त्रिवेन्द्रम, एरनाकुलम, पालघाट, त्रिचूर, कालीकट आदि स्थानों पर। इनमें उनका मुख्य स्वर सांस्कृतिक एकता का रहा है और उन्होंने सभी भारतीय भाषाओं को पूर्ण सम्मान देते हुए इस बात का आग्रह किया कि राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार करना ही उचित है। जहां तक विचारधारा का प्रश्न है आचार्य वाजपेयी एक राष्ट्रवादी लेखक हैं और अपनी दक्षिणयात्रा के दौरान उन्होंने बराबर राष्ट्रीय एकता पर बल दिया। वाजपेयीजी के व्यक्तित्व की सही समझ के लिए 'राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं' उपयोगी है। आगे चलकर इस पुस्तक का प्रकाशन 'हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग' नाम से १९७९ में हुआ।

आचार्य वाजपेयी के जीवनकाल में 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध' (१९६५), आधुनिक काव्य : रचना और विचार आदि अन्य पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें उनके निबंध संकलित हैं। प्रसाद के अतिरिक्त **कवि निराला** नामक उनकी पुस्तक भी १९६५ में प्रकाशित हुई। पहले विभागाध्यक्ष और फिर कुलपति पद की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बीच भी वाजपेयीजी का लिखने-पढ़ने का कार्य नियमित रूप से चलता रहा। जिस समय उनका निधन हुआ 'नयी कविता' शीर्षक उनकी लेखमाला 'धर्मयुग' में प्रकाशित हो रही थी। १९६७ में वाजपेयीजी का निधन हुआ और इसके बाद भी उनकी कई कृतियां प्रकाश में आयी हैं। इनमें से कुछ का पुनर्मुद्रण हुआ है और कुछ में पुरानी-नयी सामग्री को मिलाकर नया

स्वरूप देने का प्रयत्न किया गया है। नयी कविता (१९७६), सुमित्रानंदन पंत (१९७६), रस-सिद्धान्त (१९७७), आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा (१९७८), रीति और शैली (१९७९) मरणोपरान्त प्रकाशित कृतियां हैं। इनसे गुजरने पर एक विषय से सम्बद्ध वाजपेयीजी के विचारों से हमारा सम्पूर्ण परिचय होता है। जो निबंध यत्र-तत्र बिखरे हुए थे, अथवा अप्रकाशित थे, उन्हें एक स्थान पर एकत्र किया गया है। रससिद्धान्त से नयी कविता तक की आचार्य वाजपेयी की यात्रा उनके अध्ययन-मनन के विस्तार का परिचय देती है और सभी कुछ उनकी गहरी संलग्नता का प्रमाण है। सैद्धान्तिक विवेचन के अतिरिक्त आचार्य वाजपेयी ने जयशंकर प्रसाद (१९४०), महाकवि सूरदास (१९५३), प्रेमचंद (१९५४), कवि निराला (१९६५), कवि सुमित्रानन्दन पंत (१९७६) आदि पुस्तकों की रचना की है, जिनमें रचनाकारों का विस्तृत विवेचन है। यद्यपि प्रेमचंद के अतिरिक्त अधिकांश का स्वरूप निबंधात्मक ही है पर यहां हम वाजपेयीजी के समीक्षक-व्यक्तित्व को किसी रचनाकार के विषय में अपनी समग्र धारणाएं प्रस्तुत करते देख सकते हैं।

आचार्य वाजपेयी को प्रायः स्वच्छन्दतावादी समीक्षक कहा जाता है पर समीक्षा का एक विस्तृत आयाम उनके लेखन में प्राप्त होता है जिसका प्रमाण भारतीय साहित्यशास्त्र सम्बन्धी चिन्तन में मिलता है। वाजपेयीजी साहित्यिक प्रतिमानों की तलाश करते हुए पीछे की ओर भी देखना चाहते हैं। उनका कहना है : 'समय आ गया है जब हम अपनी प्राचीन पोथियों को खोलकर यह देखने का प्रयत्न भी करें कि हमारे नए चिंतन के क्षेत्र में वे कहां तक हमारा साथ दे सकते हैं। और उनका आधार लेकर हम किस प्रकार आगे बढ़ सकते हैं।' (रस-सिद्धांत : नए संदर्भ, पृ० ४१).। वे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की तरह परम्परा के जीवंत तत्वों का उपयोग आज के प्रसंग में करना चाहते हैं। रससिद्धान्त की चर्चा करते हुए वे कई प्रासंगिक प्रश्न उठाते हैं और स्वयं उनका उत्तर देते हैं। उनके लिए साहित्य का प्रयोजन है : 'आत्मानुभूति' जिसे वे व्याख्यायित करते हैं। वे आत्मानुभूति जैसे दार्शनिक शब्द के स्थान पर काव्योपयोगी शब्द का प्रयोग करते हैं—केवल अनुभूति जिसे वे भावना का समीपी मानते हुए कहते हैं : 'साहित्य मात्र के मूल में अनुभूति या भावना कार्य करती है, यह रससिद्धान्त की प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है।' उनका विचार है कि स्रष्टा की अनुभूति से रहित काव्यसृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती।

वाजपेयीजी स्वीकारते हैं कि अनुभूति एक व्यापक तत्त्व है और भारतीय काव्यशास्त्र का ध्वनिसिद्धान्त इसकी समझ में सहायक है। उनकी टिप्पणी है : 'वह (ध्वनिसिद्धान्त) इसी तत्त्व पर प्रकाश डालता है कि काव्य और साहित्य की बाहरी रूपरेखा के मर्म में आत्मानुभूति या विभावन व्यापार ही काम करता है।

काव्य की संपूर्ण विविधता के भीतर एकात्म्य स्थापित करने वाली यही शक्ति है। सपूर्ण काव्य किसी रस की अभिव्यक्ति करता है, और वह रस किसी स्थायीभाव का आश्रित होता है और यह स्थायी भाव रचयिता की अनुभूति से उद्गम प्राप्त करता है' (रससिद्धान्त : नए संदर्भ, पृ० ४५)। वाजपेयीजी अनुभूति और अभिव्यक्ति की एकरूपता स्वीकारते हुए भी अनुभूति को प्राथमिकता देते हैं। उनका कथन है कि 'काव्यानुभूति स्वतः एक अखंड आत्मिक व्यापार है और समस्त साहित्य में इस अनुभूति या आत्मिक व्यापार का प्रसार रहता है। उसके निर्माण में असंख्य सामाजिक या सांस्कृतिक परिस्थितियों का योग हो सकता है। परन्तु उनका काव्यत्व तो उसकी सर्व संवेद्य अनुभूतिप्रवणता में ही रहेगा।' अपनी व्यावहारिक समीक्षाओं में वाजपेयीजी ने इसी अनुभूति पक्ष पर बल दिया है और जोर देकर कहा है कि रचना जीवन से अपनी सामग्री प्राप्त करती है, पर काव्य में वह तभी उपयोगी है जब कवि के संवेदन का हिस्सा बनकर आए। इस दृष्टि से वे रचना की स्वतंत्र स्थिति भी स्वीकारते हैं।

भारतीय साहित्यशास्त्र पर नयी दृष्टि डालते हुए वाजपेयीजी उसके कई महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विचार करते हैं और अपनी समीक्षाओं में उनका उपयोग भी करते हैं। पाश्चात्य साहित्यालोचन और भारतीय साहित्यशास्त्र पर तुलनात्मक दृष्टि डालते हुए वे इस बात पर खेद व्यक्त करते हैं कि विद्वानों ने इस ओर गम्भीरता से विचार नहीं किया। वे 'काव्यशास्त्र के नवनिर्माण' की बात करते हुए रस, अलंकार, रीति, गुण, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि पर टिप्पणी करते हैं जो विचारणीय है : 'ध्वनि संप्रदाय के आविर्भाव से रस के प्रसार में पूरी सहायता मिली। अलंकार सम्प्रदाय का उत्कर्ष स्थिर न रह सका और उसके समस्त उपकरण उसके अंतर्गत बने न रह सके, जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि स्वतः अलंकार सम्प्रदाय अपनी स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता छोड़कर कभी रीति, कभी रस और कभी वक्रोक्ति संप्रदाय का अंग मात्र बनता गया' (रससिद्धान्त : नए संदर्भ, भारतीय साहित्यशास्त्र की रूपरेखा)।

भारतीय साहित्यशास्त्र/काव्यशास्त्र की प्रासंगिकता की तलाश का काम आचार्य वाजपेयी ने गम्भीरता से किया है और इस सिलसिले में वे सबसे अधिक विचार रससिद्धान्त पर करते हैं। प्राचीन रससिद्धान्त का स्वरूप क्या है और विभिन्न आचार्यों की इस विषय में क्या व्याख्याएं हैं ! रस की कोई नयी विवेचना संभव है क्या ? और आज के संदर्भ में उसकी कोई उपादेयता है, अथवा नहीं। रससिद्धांत को आचार्य वाजपेयी सम्पूर्ण रूप से अप्रासंगिक नहीं मानते और इस संदर्भ में 'रस-सम्बन्धी आधुनिक चिन्तन' शीर्षक उनका निबंध विचारणीय है। रस-सिद्धान्त से सम्बद्ध उनके चार निबंध 'रस सिद्धांत : नए संदर्भ' पुस्तक में संकलित हैं : 'भरत की रस-व्याख्या, रस : एक नई व्याख्या, विश्व के काव्यात्म-

वाद और उस संदर्भ में रसवाद, रस-संबंधी आधुनिक चिन्तन।'

आचार्य वाजपेयी के अवचेतन में यह भाव विद्यमान है कि भारतीय साहित्य-शास्त्र के पुनर्संयोजन का प्रयत्न होना चाहिए और उसके जीवंत तत्त्वों का उपयोग आज के संदर्भ में किया जाना चाहिए। इसी क्रम में वे रससिद्धान्त पर विस्तार से विचार करते हैं। रससिद्धान्त को वे 'काव्यदृष्टि का परिमार्जक' कहते हुए रस को 'आस्वादार्थक' शब्द मानते हैं। भरत की रस-व्याख्या पर विचार करते हुए वे लिखते हैं : 'रस के निष्पादक विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों की व्याख्या द्वारा भरत मुनि ने एक ओर लोकजगत से काव्यजगत की विशिष्ट सत्ता स्थिर की और दूसरी ओर काव्य उपकरणों का विशद रूप से निर्देश किया है। यही वह काव्य-शास्त्र की आधारशिला है जिस पर भारतीय काव्यशास्त्र का प्रासाद खड़ा किया गया है और यही रस तत्त्व के विधायक मौलिक सूत्र की विशिष्ट परिकल्पना है' (रस सिद्धान्त : नए संदर्भ, भरत की रस व्याख्या)। वाजपेयीजी की मान्यता है कि 'भरत का रस-संबंधी मानसिक आस्वादन का तथ्य प्रत्यक्ष गोचरता के आधार पर निर्मित है, शास्त्रीय चिंतन के आधार पर नहीं।' इस प्रकार की टिप्पणियां उनकी मौलिक विवेचन-क्षमता का प्रमाण हैं और बहस को जन्म देती हैं। रस-सूत्र के प्रमुख व्याख्याकार : भट्टलोल्लट, शंकुक, आनन्दवर्द्धन, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, भोज आदि पर भी उन्होंने विस्तृत टिप्पणियां की है।

भारतीय काव्यशास्त्र, विशेषतया रससिद्धान्त पर विचार करते हुए आचार्य वाजपेयी के सामने पश्चिम का काव्यशास्त्र भी है जैसे वे भरत मुनि और अरस्तू की अनुकृति-सम्बन्धी धारणाओं को एक साथ देखते हैं। वे जब विश्व के काव्यात्म-वाद के संदर्भ में रसवाद को देखना चाहते हैं तब उनका आशय भारतीय साहित्यशास्त्र को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है। प्लेटो, अरस्तू, लोंजाइनस, शेली, कॉलरिज, क्रोचे आदि के साथ वे रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य आदि की चर्चा करते हैं। वे भरत मुनि के नाट्यशास्त्रीय रससिद्धांत और अरस्तू की मौलिक स्थापनाओं में 'विस्मयजनक समानता' देखते हैं। आज के संदर्भ में वाजपेयजी की महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है : **रस अंततः सामाजिक अनुभूति** है। स्वयं कवि और उसकी काव्यकृति की निर्माण-प्रक्रिया के विवेचन का आग्रह आधुनिक है। उस समय काव्य को मूलतः समाज वस्तु के रूप में ही देखा गया' (रससिद्धांत : नए संदर्भ, रस सम्बन्धी आधुनिक चिंतन)। पूर्व-पश्चिम की अव-धारणाओं में संगति साम्य की तलाश वाजपेयीजी की काव्यशास्त्र सम्बन्धी मूल चिन्ताओं से उपजी है। वे नवलेखन विशेषतया नई कविता के सम्बन्ध में रसचिंतन पर विचार करते हुए खेद व्यक्त करते हैं कि यदि कृतियों के साधरणीकरण में बाधा पड़ती है और उनकी भावधारा असामाजिक है अथवा लोकरुचि के प्रतिकूल तो यह निश्चय ही रचना की दुर्बलता है। इस प्रकार आचार्यजी ने भारतीय साहित्य-

शास्त्र के विषय में नये ढंग से विचार करने का प्रयत्न किया है।

व्यावहारिक समीक्षा से सम्बद्ध आचार्य वाजपेयी की पुस्तकें हैं : **महाकवि सूरदास, हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, जयशंकर प्रसाद, कवि निराला, कवि सुमित्रानन्दन पंत, प्रेमचन्द तथा नई कविता।** १९५३ में प्रकाशित महाकवि सूरदास पुस्तक में वाजपेयीजी ने भक्ति के विकास के सन्दर्भ में सूर के काव्य पर विचार किया है। इसके पूर्व वे काशी नागरी प्रचारिणी से प्र॰ाशित सूरसागर का सम्पादन कर चुके थे। 'महाकवि सूरदास' पुस्तक में आरंभ के तीन शोधपरक अध्यायों के अन्दर आत्मपरक भावभूमि, दार्शनिक पीठिका, सांस्कृतिक और नैतिक पक्ष, प्रतीक-योजना, काव्य-सौन्दर्य शीर्षक निबंधों में सूर के कृतित्व की परीक्षा की गई है। वाजपेयजी को स्वच्छंदतावादी समीक्षक कहा जाता है और पुराने साहित्य पर विचार करते हुए भी उनकी यह स्वच्छन्दतावादी दृष्टि सजग रहती है, जैसे सूर का विवेचन करते हुए वे मुख्य रूप से कवि की 'आत्मपरक भावभूमि' पर बल देते हैं। आचार्य वाजपेयी का कथन है : 'सूर जैसे भक्ति-विह्वल कवि के लिए यह संभव नहीं था कि वे वस्तु के रूप में कृष्ण के बाल्य-काल से लेकर वियोग-काल तक के चरित्र का चित्रण कर देते —अपने हृदय के उमड़ते हुए आनन्द को दबा लेते। प्रायः प्रत्येक पद की अन्तिम पंक्ति में उनकी प्रेमातुर भावना मुखर हो उठी है— इसका रहस्य वे ही समझेंगे जो भागवत की समाधि-भाषा का रहस्य समझते हैं' (महाकवि सूरदास, पृ० ८५)।

सूरदास की कविता का विवेचन करते हुए आचार्य वाजपेयी मूलतः उनके भाव जगत को हमारे सामने लाते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि 'काव्य का क्षेत्र भावों की क्रीड़ा भूमि है।' उनका विचार है कि सूर जैसे कवि को किसी चौहद्दी में बांधने की कोशिश करने से उनका काव्य हमारी पकड़ में नहीं आ सकेगा और हम उसके सही आस्वाद से वंचित हो जायेंगे। अपनी भावनामयता की अभिव्यक्ति के लिए सूर ने गेय पदों का माध्यम चुना जहां वे अधिक स्वतंत्र भूमि पर विचर सकते हैं। वास्तव में कृष्ण के प्रति सूर की दृष्टि किसी सीमा तक स्वच्छन्दतावादी है जो आध्यात्मिकता तथा अलौकिक भूमि तक पहुंचती है और इसे व्यक्त करने के लिए जो गीतिसृष्टि की विधा उन्होंने अपनाई, वह उनके भाव-जगत के साथ न्याय कर सकने में समर्थ है। कृष्ण की विभिन्न लीलाएं रसात्मकता के साथ चित्रित हुई हैं जो कवि की भावनामयता से उपजी हैं। वाजपेयीजी का सूर-सम्बन्धी विवेचन एक प्रकार से उन विद्वानों को उत्तर है जो तुलसी-सूर की तुलना करते हुए, तुलसी को श्रेष्ठतर कवि प्रमाणित करने में अपनी शक्ति व्यय करते हैं। वास्तव में इस प्रकार की तुलना पिछड़ी हुई समीक्षा अथवा प्रभाववादी विवेचन का परिणाम है। रचनाकार जीवन-जगत को अपने ढंग से देखते-समझते हैं और उसकी अभिव्यक्ति के लिए मनोवांछित माध्यम का चुनाव करते हैं। इस दृष्टि से वाजपेयीजी सूर के

संदर्भ में एक प्रासंगिक प्रश्न उठाते हैं—नैतिकता का प्रश्न और कवि का बचाव करते हुए पूछते हैं कि चीर-हरण जैसे विषय कवि की दृष्टि में क्या हैं ? उनका उत्तर है : 'कवि का आशय किसी विशेष गोपी या किसी विशेष पुरुष के द्वारा चीर हरण कराकर उसे लज्जित करने का नहीं है । वह एक सामूहिक भाव या तथ्य को प्रकृति और पुरुष के आत्यन्तिक एकत्व को प्रगट करना चाहता है' (वही, पृ० १२२)। इसी क्रम में रस की आध्यात्मिकता की ओर भी संकेत किया गया है : 'गोपिकाएं कृष्ण के साथ तन्मय होकर विहार करती हैं, मानों जीव अपने सब बन्धनों से मुक्त होकर अपने स्वरूप (कृष्ण) को पहचानता है और उसी आनन्द में विभोर होकर क्रीड़ा करता है । वहां कृष्ण और गोपिकाएं दो नहीं रहीं, एक ही हो गई' (वही, पृ० १३३)।

आचार्य वाजपेयी भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में सूर के काव्य पर विचार करते हुए, बराबर सजग हैं कि कोई रचना अपना सौन्दर्यशास्त्र बनाकर ही काल-जयी होती है। सूर के पदों में दार्शनिक विचार, काव्य की सम्पत्ति बनकर आए हैं और कवि ने उन्हें अपनी भावानुभूति का हिस्सा बनाकर प्रस्तुत किया है। सूर के काव्य सौन्दर्य में वाजपेयीजी उस 'असाहित्यिक दृष्टिकोण' का विरोध करते हैं जहां भक्त कवियों को गलत ढंग से देखा जाता है। कृष्णगाथा पर विस्तृत विचार करते हुए वे उन प्रसगों की विशेष चर्चा करते हैं जहां सूर ने काव्यनायक के व्यक्तित्व को नयी अर्थदीप्ति देने का प्रयत्न किया है। इनमें से कतिपय रसिक प्रसंगों को लेकर कट्टरपंथी आलोचक अनुदार टिप्पणी करते हैं। पर वाजपेयीजी कहते हैं 'व्यक्तिगत प्रेम का सामूहिक-सामाजिक स्वरूप ही भक्ति है' और वे उनकी काव्य चेष्टाओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते है जिसमें 'समाज-व्यापिनी कृष्ण भक्ति' की नियोजना की गई है (महाकवि सूरदास : पृ० १५५)। इस सन्दर्भ में वाजपेयीजी कृष्ण को उनकी रसिक रेखाओं से बाहर लाने का प्रयत्न करते हैं और उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्ष भी उद्घाटित करते हैं। मथुरा पहुंचने पर कृष्ण का चरित्र एक नया सामाजिक आयाम प्राप्त करता है : 'विजय का पूर्ण आत्मविश्वास प्रतिक्षण मन में रखते हुए भी (अर्थात् भीतर से निश्चिन्त होते हुए भी) बाहर विकट संघर्षों का सामना कृष्ण को करना पड़ता है। वे सच्चे अर्थ में क्रांतिकारी का आत्मविश्वास और उसी की सी कष्ट-सहिष्णुता लेकर इस नये नाट्य में प्रवेश करते हैं।···सूरसागर के इस प्रसंग को देखने पर इसकी अद्भुत समानता उन रचनाओं से देख पड़ती है जिनमें प्रचलित समाज-व्यवस्था अथवा राज-व्यवस्था के विरुद्ध क्रांतिकारी चरित्रों की अवतारणा की गई है' (वही, पृ० १५४)।

आचार्य वाजपेयी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित सूरसागर (दो खण्ड) के सम्पादन के अतिरिक्त गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित रामचरित-मानस का भी सम्पादन किया। इस अवसर पर उन्होंने मानसांक '(वर्ष १३, अंक

१) की लंबी भूमिका लिखी थी। तुलसी से सम्बद्ध उनके कुछ अन्य निबंध भी प्रकाशित हुए थे जिनमें उन्होंने उन कठिनाइयों का उल्लेख किया है जो तुलसी के अध्ययन में बाधा बनती हैं। उनका आग्रह है कि जब किसी कवि से कोई विशेष अपेक्षाएं की जाने लगती हैं तो समीक्षा के अपने पूर्वाग्रह बनते हैं और कविता का सौन्दर्य हमारी पकड़ में नहीं आता। इस सम्बन्ध में आचार्य वाजपेयी अपने यशस्वी गुरु का समर्थन नहीं करते। वे लिखते हैं : 'जब से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने शक्ति सौन्दर्य और शील की पराकाष्ठा राम चरित्र में दिखाई है, तब से लोगों ने समझ लिया है कि ये तीनों गुण काव्य-चरित्रों के लिए अनिवार्य हैं और जहां कहां अवसर आए इसकी ओर इंगित कर देना चाहिए। यह भ्रान्ति कला की विवेचना में अत्यधिक बाधक हुई है। केवल शक्ति की, सौन्दर्य की अथवा शील की पराकाष्ठा दिखाना किसी काव्य का लक्ष्य नहीं हो सकता। काव्य का लक्ष्य तो होता है, रस-विशेष की प्रतीति या अनुभूति उत्पन्न करना' (महाकवि सूरदास, पृ० १४७)। आचार्य वाजपेयी ने तुलसी-सम्बन्धी अपने निबंधों में यह आग्रह किया है कि इस कालजयी कवि को अकुंठित भाव से देखा-समझा जाय। 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' में वाजपेयीजी लिखते हैं : '···रामचरित के भीतर मानवता के जो आदर्श फूट निकले हैं वे मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकर हैं। यही नहीं रामचरित के बाहर जाकर भी उन्होंने मानव-समाज के लिए हितकर पथ का निर्देश किया है' (हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३५-३६)।

आचार्य वाजपेयी से प्रेमचन्द का वैचारिक वाद-विवाद हुआ था जो 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' में संकलित है। प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित 'हंस' का आत्मकथांक १६३२ में प्रकाशित हुआ था जिसके मुखपृष्ठ पर जयशंकर प्रसाद की कविता : 'मधुप गुनगुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी' आई थी। इसे लेकर यह विवाद चला। वाजपेयीजी का आक्षेप है कि इस बहाने प्रेमचंदजी ने 'जागरण' के पहले अंक में 'भारत' पत्र को बुरे शब्दों में याद किया है। वास्तविक झगड़ा यह है कि वाजपेयीजी 'साहित्य में शुद्ध साहित्यिक संस्कृति' की बात करते हैं और प्रेमचंद पर 'प्रोपेगेंडा-वृत्ति' का आरोप लगाते हैं। यह बहस-मुबाहसा दो दृष्टियों को लेकर है। आगे चलकर वाजपेयीजी ने प्रेमचंद के कृतित्व को स्वीकृति दी और लिखा है कि 'प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास प्रकाशित हो जाने पर हमारी धारणा में परिवर्तन हुआ है।' इतना ही नहीं, प्रेमचन्द पर उन्होंने एक सम्पूर्ण पुस्तक लिखी। **प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन** में वाजपेयीजी का पहला निबंध है : हिन्दी उपन्यास-परम्परा और प्रेमचंद। यहां वे लिखते हैं : 'आरंभिक युग को पार करते ही हम हिन्दी उपन्यासों के उस नए युग में पहुंचते हैं जिसका शिलान्यास प्रेमचन्द ने किया और जिसमें आकर हिन्दी उपन्यास एक सुनिश्चित कला स्वरूप को प्राप्त कर अपनी आत्मा को पहचान सका तथा अपने उद्देश्य से परिचित होकर

उसकी पूर्ति में लग सका' (प्रेमचंद, पृ० ५)।

'प्रेमचद' पुस्तक में 'सेवासदन' से 'गोदान' तक प्रमुख उपन्यासों पर स्वतंत्र निबंध हैं और तीन छोटे उपन्यासों का विवेचन एक साथ। कहानियों पर भी एक निबंध है और नये संस्करण (१९७९) में हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, वाला निबंध भी। आचार्य वाजपेयी अपनी इस पुस्तक में एक विवादास्पद प्रश्न उठाते हैं—आदर्श और यथार्थ का और लिखते हैं : 'प्रेमचंद के उपन्यासों की सबसे प्रमुख विशेषता है उनकी आदर्शवादिता। चरित्रों और उनकी प्रवृत्तियों का निर्देश करने में वे आदर्शोन्मुखी हैं। घटनावली का निर्माण और उपसंहार करने में आदर्श का सदैव ध्यान रखते हैं।' यही नहीं वाजपेयीजी आदर्श और यथार्थ में किसी मेल-मिलाप की गुंजायश तक नही मानते। इस विषय में उनका स्पष्ट मत है कि 'उन्हें यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहना भी स्पष्टता को ही बढ़ाना है।' उनका लम्बा वक्तव्य उनकी धारणा को स्पष्ट करता है : 'कोई कलाकार या तो यथार्थवादी ही हो सकता है या आदर्शवादी ही। ये दोनों परस्पर विरोधी विचारधाराएं और कला शैलियां हैं। इनका मिश्रण किसी ए रचना में संभव नहीं। साहित्यिक निर्माण में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती। वास्तव में प्रेमचंद अपने विचार और लेखन में आदर्शवादी हैं। आदर्शवादी चित्रण से तात्पर्य है मानव की सद्वृत्तियों पर विश्वास रखकर साहित्य-निर्माण करना। उनकी समस्त साहित्यिक कृतियों को देखकर ही हम ऐसा कहते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य का सांगोपांग अध्ययन करने पर उन्हें आदर्शवादी लेखक ही कहना उचित होगा' (प्रेमचंद, पृ० ९)। प्रेमचंद को लेकर आदर्श-यथार्थ का यह झगड़ा आज भी कायम है और लोग उन्हें अपनी-अपनी ओर खींचना चाहते हैं। प्रेमचंद-सम्बन्धी विवेचन में वाजपेयीजी ने अपनी आरम्भिक धारणाओं में परिवर्तन किया जिसे उनकी दृष्टि के विकास के रूप में देखना अधिक उचित होगा।

हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, आधुनिक साहित्य जैसी अपनी प्रतिनिधि पुस्तकों के अतिरिक्त वाजपेयीजी ने अपने अन्य निबंध-संकलनों में अपनी व्यावहारिक समीक्षा का परिचय दिया है। वास्तविकता यह है कि उनमें सैद्धांतिक-व्यवहारिक समीक्षाएं लगभग साथ-साथ चलती हैं। जयशंकर प्रसाद, कवि निराला, कवि सुमित्रानन्दन पंत और नई कविता उनकी व्यावहारिक समीक्षा को व्यक्त करने वाली स्वतंत्र पुस्तकें हैं। आरंभिक कृति के रूप में जयशंकर प्रसाद की चर्चा हो चुकी है और कहा गया है कि इससे आचार्य वाजपेयी की सतेज प्रतिभा का परिचय मिलता है। वे विशेष रूप से प्रसाद की 'मानवीय भूमि' का उल्लेख करते हुए कहते हैं : 'प्रसादजी तो विकासशील और उदार सामाजिक प्रवृत्तियों के निरूपक हैं। उनकी साहित्य-सृष्टि एक आशावादी और स्वतंत्र-प्रेमी युग की

प्रतिनिधि हैं। साहित्यिक अर्थ में उनका साहित्य सर्वथा प्रगतिशील है' (जयशंकर प्रसाद : भूमिका)। इतना ही नहीं वे प्रसाद और प्रेमचंद को एक दृष्टि से एक-दूसरे का पूरक मानते हैं। 'एक में दुःख का बोध है और दूसरे में आनन्द का विधानात्मक पक्ष', (वही : पृ० २०)।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आचार्य वाजपेयी के प्रिय कवि हैं···कई कारणों से। वे दोनों ही बैसवाड़ा क्षेत्र के हैं और आचार्यजी विद्यार्थी जीवन में ही महाकवि के निकट सम्पर्क में आ गए थे। आचार्यजी ने काशी में निराला जयंती का आयोजन भी अखिल भारतीय स्तर पर किया था। पर इन वैयक्तिक प्रसंगों के साथ आचार्य वाजपेयीजी निराला को 'वैविध्य का कवि कहते हुए लिखते हैं : 'निराला जैसे अनेक क्षितिजों और दिगन्त भूमिकाओं के कवि को वाद की सीमाओं में बांधना और भी कठिन हैं, यथापि निराला छायावाद के प्रवर्तकों में परिगणित होते हैं। निराला के साथ छायावाद शब्द का सम्बन्ध ऐतिहासिक भूमिका पर बना था, परन्तु आरम्भ से ही उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियां उनको छायावाद की सीमित भूमि से बाहर खींच रही थीं' (कवि निराला, पृ० ४१)। ज़ाहिर है कि वाजपेयीजी निराला का वह वैविध्य प्रमाणित करना चाहते हैं जहां वे छायावाद की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए प्रगतिशील चेतना और सामाजिक यथार्थ की ओर अग्रसर होते हैं जिसे वे 'साहित्यिक प्रगतिशीलता' कहते हैं। वाजपेयीजी निराला के काव्य-विकास को कुछ चरण में रखकर देखते हैं : (१) मतवाला-काल, 'प्रथम अनामिका', 'परिमल' (१९१६-३०)। इसे वे स्वच्छंद स्वरूप का काव्य कहते हैं। (२) गीत सृष्टि : 'गीतिका' आदि (१९२८-१९३६)। (३) आख्यान तथा हास्य-व्यंग्य : राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, सरोजस्मृति (१९३५-१९४२)। (४) प्रयोग-काल तथा व्यंग्य : कुकुरमुत्ता, बेला, नये पत्ते, अणिमा (१९४२-१९५०)। (५) आध्यात्म-चरण : अर्चना, आराधना, गीत-गुंज, सांध्य काकली (१९५०-१९६१)।

'कवि निराला' पुस्तक के आरम्भ में वाजपेयीजी जीवनी और व्यक्तित्व शीर्षक से निराला की जीवन-रेखाएं प्रस्तुत करते हैं। वे उन्हें एक असाधारण, महान पुरुष स्वीकारते हुए लिखते हैं : 'इस खुले व्यक्तित्व के सभी सम्भावित संकट निरालाजी को उठाने पडे परन्तु उनके हृदय की निर्मलता और द्वेषहीनता अन्ततः लोगों की दृष्टि में आई। निरालाजी के व्यक्तित्व के प्रति हिन्दी संसार में निरन्तर सम्मान बढ़ता गया है और अन्तिम दिनों में वे एक महापुरुष के रूप में स्वीकार किये गए थे। इसी स्वीकृति के मूल में निरालाजी के व्यक्तित्व की वे विशेषताएं हैं जिन्हें हम सरलता, उदारता और निर्भीकता आदि शब्दों में अभिहित करते हैं' (कवि निराला, पृ०१९)। वाजपेयीजी निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व में समान रेखाएं देखते हैं और इस दृष्टि से उन्हें एक 'समन्वित इकाई' मानते हैं। कई

बार यों होता है कि इन दोनों में अधिक दूरी हो जाती है और तब रचना की दुर्बलताएं भी हमारे सामने आ जाती हैं। निराला साधारण निम्न मध्यवर्ग परिवार में जन्मे थे और उनका जीवन एक संघर्षगाथा है। यदि कवि के शब्दों में ही कहें तो 'दुख ही जीवन की कथा रही' (सरोजस्मृति) आदि। यह संघर्ष उन्हें सामान्य जनजीवन से जोड़ता है, उनमे करुणाभाव तो जगाता ही है, वे व्यंग्य की प्रहारात्मक मुद्रा में भी आते है।

निराला को वाजपेयीजी भारतीय काव्य परम्परा के सन्दर्भ में रखकर देखना चाहते हैं और लिखते हैं कि कवि में इनका सर्वोत्तम संयोजन हुआ है। निराला वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी तथा अन्य भक्त कवियों को आत्मसात किये हुए हैं और भारतीय नवजागरण, विशेषतया बंगाल और रवीन्द्र से उन्होंने प्रेरणा पाई है। विश्व काव्य की चर्चा करते हुए आचार्यजी निराला की 'मानववादी भूमिका' का विशेष उल्लेख करते हैं : 'समग्र रूप से देखने पर निराला-काव्य की मानववादी भूमि भी स्पष्ट हो जाती है। उन्होने मानवीय भावना और प्रवृत्तियों का सम्मान किया है और ऐसा करते हुए उन्होंने वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं को दूर ही रहने दिया है। इसी अर्थ में उनका काव्य तटस्थ और वस्तुमुखी है' (कवि निराला, पृ० २०८)। निराला अपने निजी सुख-दुख से ऊपर उठकर वृहत्तर समाज-संवेदन से जुड़ते हैं, यह उनके रचनाकार की विजय है। इसी बल-बूते पर उनकी रचना कई दिशाओं मे जा सकने की सामर्थ्य रखती है—वह भी लगभग समान कौशल के साथ। वाजपेयीजी ने निराला के इस वैविध्य-भरे गुण का बखान किया है : गीत-सृष्टि, महाव ाव्य जैसे आख्यान काव्य, दार्शनिक विशेषतया वेदान्ती दृष्टि, हास्य-व्यंग्य आदि। इस दृष्टि से वे ऐसे कवि हैं जो स्वच्छन्दतावाद को नये आयाम देते हुए प्रगति-प्रयोग तक आते हैं। आचार्य वाजपेयी ने निराला का विवेचन उस समय आरम्भ किया था जब उन पर कई प्रकार के आक्षेप किए जा रहे थे और इस दृष्टि से भी इस पुस्तक का अपना महत्व है। इस सिलसिले में एक और सार्थक नाम डॉ० रामविलास शर्मा का है। इन समीक्षकों ने निराला को सही संदर्भ में देखा-समझा और उनके कृतित्व को पाठकों तक पहुंचने का प्रयत्न भी किया।

'**कवि सुमित्रानन्दन पंत**' में वाजपेयीजी के नए-पुराने निबंध हैं जो कवि के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं। इसका आरंभिक सैद्धांतिक निबंध भूमिका के तौर पर लिखा गया है। उसके अनन्तर छायावाद की प्रगीत सृष्टि और पंत का प्रवेश, पुष्पोहार (पंत का व्यक्तित्व और काव्य), पंत का काव्य : एक मूल्यांकन, परवर्ती काव्य और अरविंद दर्शन निबंध हैं। अपने समकालीन अधिकांश रचनाकारों ी तरह आचार्य वाजपेयी ने श्री सुमित्रानन्दन पंत को भी निकट से जाना था और वे १९३१ की अपनी पहली भेंट का उल्लेख करते हैं, जब वे 'भारत' पत्र के सम्पादक

थे। उस समय प्रसाद-निराला-पंत शीर्षक जो लेखमाला इसमें प्रकाशित हो रही थी, पंतजी ने उसकी सराहना की थी। व्यक्ति के रूप में पंतजी के विषय में वाजपेयीजी का विचार है कि 'पंत की अतिशय शालीनता और सकोचशीलता जहां उनके व्यक्तित्व को एक असाधारण आकर्षण देती है, वहीं उस पर कुछ प्रतिबंध भी लगा देती है।···उनकी अंतर्मुखता जहां एक ओर उनकी रचनाओं को वैशिष्ट्य देती है, वहीं सामाजिक संपर्क की भास्वरता की कमी भी ला देती है' (कवि सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ५२)।

आचार्य वाजपेयी पंतजी का वैशिष्ट्य स्वीकारते हुए लिखते हैं: 'नवीन हिंदी कविता में सबसे श्रेष्ठ सृष्टि प्रतिभा लेकर सुमित्रानन्दन पंत का विकास हुआ था। हिन्दी के क्षेत्र में पंत की कल्पना की शक्ति अजेय, उसका नवनवोन्मेष अप्रतिम है' (कवि सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ५९)। वास्तव में वाजपेयीजी पत की कविता में कल्पना को मुख्य प्रस्थान-बिन्दु के रूप में मानते हैं और उनके काव्य विकास की चर्चा करते हुए निरन्तर उसी का प्रसार देखते हैं। 'परिवर्तन' को निरालाजी ने 'पूर्ण कविता' कहा है और वाजपेयीजी की टिप्पणी है: 'परिवर्तन में पहुंचकर पंत की कल्पना सचेत होकर अपनी शक्ति का परिचय देती है' (पंत, पृ० ६४)। इसी से पंत की अनुभूतियों और उनकी सौन्दर्य चेतना को जोड़ दिया गया है। पंतजी ने एक लम्बी काव्ययात्रा की और परिमाण में उन्होंने विपुल काव्यसृजन किया। इस बीच उनकी काव्यदिशाएं भी बदली हैं, स्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद और अंत में आध्यात्मिक चेतना। पंत की पूर्ववर्ती और परवर्ती कविता को लेकर प्रायः प्रश्न किया जाता है कि इनमें कवि की प्रतिभा का स्वरूप क्या है? आचार्य वाजपेयी पंत के पल्लवकालीन सृजन को अधिक सराहते हैं और उनके परवर्ती काव्य को एक प्रकार का 'अकाव्यत्व' कहते हैं। उनका बहुउद्धृत वक्तव्य है: 'सन् ३२ या उसके आस-पास पंत कवि के बदले कलाकार अधिक हो गये और काव्य-रचना के स्थान पर कुछ ऐसी कृतियां करने लगे जो ललित की अपेक्षा उपयोगी अधिक थीं अथवा जो, सीधे ही क्यों न कहें, काव्य की अपेक्षा काव्याभास अधिक थीं। साहित्य और कविता की शैलियां बदलती हैं, पैमाने बदलते हैं पर इतना नहीं कि कविता और साहित्य बेपहचान हो जाएं। हम यह भी मानते हैं कि पंत सरीखे प्रतिभावान कवि फिसलते-फिसलते भी कहां तक फिसलेंगे। अब भी उनकी समस्त कृतियों में सुन्दर कला-कौशल है, यत्र-तत्र मार्मिक रूपयोजना और सूक्ष्म वस्तुचित्रण है, पर जहां तक प्रगीतकाव्य का संबध है, हिन्दी का शेली हिन्दी में आता-आता ही रह गया' (कवि सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ४७)।

'**नई कविता**' आचार्य वाजपेयी की मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तक है और उनके चिन्तन की गतिशीलता का प्रमाण। कई बार वाजपेयीजी को नयी रचनाशीलता, विशेषतया नये हिन्दी काव्य के विरोधी रूप में प्रस्तुत किया जाता है और

इसके लिए प्रयोगवाद के सम्बन्ध में उनकी वह टिप्पणी उद्धृत की जाती है जो उन्होंने तारसप्तक को लक्ष्य करके लिखी थी : 'उलझी हुई संवेदना के कारण प्रयोगवादी कवि बुद्धि और भावना के ऐसे संघर्षों में पड़ा रहता है कि वह अपने और श्रोता के बीच द्वन्द्व को मिटा ही नहीं पाता। इस बौद्धिक और शंकालु प्रवृत्ति के कारण प्रयोगवादी कवि अन्वेषी हो जाता है और वास्तविक काव्यभूमि पर कभी पहुंचता ही नहीं' (नई कविता, पृ० ९२)। आचार्यजी का मुख्य आक्षेप अतिरिक्त बौद्धिकता को लेकर है और वे उसे 'वैचित्र्यप्रिय' कहते हैं जहां न अनु-भूति के प्रति ईमानदारी है, न सामाजिक उत्तरदायित्व का एहसास। इतना ही नहीं वे प्रयोगवादी रचनाओं को एक प्रकार का 'साहित्यिक अनाचार' तक कहते हैं। उनकी तीखी टिप्पणी है : 'प्रयोगवाद हिन्दी में बैठ-ठाले का धंधा बनकर आया था। प्रयोक्ताओं के पास न तो काव्य-सम्बन्धी कोई कौशल था और न किसी प्रकार की कथनीय वस्तु थी' (आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा, पृ० १०३) ये टिप्पणियां निश्चय ही कठोर हैं, पर प्रश्न उठता है कि आचार्य वाजपेयी जैसे अपेक्षाकृत उदार व्यक्ति की इन प्रतिक्रियाओं का कारण क्या है? हम मानते हैं नयी रचनाशीलता से साक्षात्कार का कार्य आसान नहीं होता। इस प्रकार की कठिनाई आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे समीक्षक के सामने भी उपस्थित हुई थी और कहा जाता हैं कि वे छायावाद को अपनी सम्पूर्ण सहानुभूति नहीं दे सके थे। आचार्य वाजपेयी की स्वच्छंदतावादी दृष्टि गैररूमानी कविता से संवाद स्थापित करने में असुविधा महसूस करे तो कोई आश्चर्य नहीं पर उनकी चिन्ता जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण को लेकर है, जो विचारणीय है।

आचार्य वाजपेयी के गतिशील चिन्तन और उनकी विकासमान अवधारणाओं का प्रमाण हमें तब मिला जब अपनी आरंभिक आक्रोश-भरी टिप्पणी के अनन्तर उन्होंने नए काव्य से एक निकट सम्पर्क स्थापित किया। 'नई कविता' के प्रारंभिक निबंध में आधुनिक काव्य में वे प्रगतिवाद-प्रयोगवाद दोनों को स्वीकार करते हुए, उसे नई कविता का नाम देते हैं और स्वीकार करते हैं कि इसकी मुख्य धारा 'यथार्थ-मुखी' है। 'यथार्थवाद' की यह पहिचान स्वयं प्रमाणित करती है कि आचार्यजी अपनी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि तथा शिल्प में क्लासिकीय पैटर्न से आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, कुंवरनारायण, केदारनाथ सिंह आदि के विषय में स्वतंत्र टिप्पणियां करते हुए वे एक प्रकार से समकालीन कविता के पास पहुंचते हैं। एक सजग पाठक के द्वारा ही इतनी लंबी अध्ययन-यात्रा संभव हो सकती है। चिन्ता (अज्ञेय), अन्धा युग (भारती), संशय की एक रात (नरेश मेहता), आत्मजयी (कुंवरनारायण), एक कंठ विषपायी (दुष्यंत कुमार) आदि का विवेचन भी उन्होंने किया है। इस प्रकार आचार्यजी प्रयोगवाद से आरम्भ कर, नई कविता तथा समकालीन कविता

तक आते हैं। पुस्तक के प्रस्तोता रूप में डॉ० शिवकुमार मिश्र ने अपनी लबी भूमिका में, आचार्यजी को सही सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

'प्रयोगवादी रचनाएं' शीर्षक निबंध तारसप्तक के विषय में वाजपेयीजी की आक्रोशभरी प्रतिक्रिया है, पर अगस्त १९६७ में जब उनका निधन हुआ उस समय 'नई कविता' शीर्षक उनकी निबंधमाला 'धर्मयुग' में प्रकाशित हो रही थी (६ अगस्त १९६७ से धारावाहिक रूप से आरंभ)। इसमे उनका स्वर निश्चय ही एक बुजुर्ग समीक्षक का है जो नयी रचना-शीलता को अपनी स्वीकृति देता है, कुछ नसीहतों के साथ। उस समय हिन्दी में आधुनिकतावाद का बहुत शोर था और स्टिफन स्पेण्डर की पुस्तक 'द स्ट्रगल आफ़ द माडर्न' की तर्ज पर वैचारिक आन्दोलन चलाया जा रहा था। इस विषय में वाजपेयीजी का कहना है : 'प्रत्येक देश का आधुनिक भावबोध उसके सामाजिक परिवेश और लक्ष्य तथा उद्देश्य के आधार पर बनाया जाता है। सारे संसार का आधुनिक बोध न तो एक है और न ही हो सकता है, क्योंकि सबकी परिस्थितियां भिन्न हैं तथा समस्याए भी भिन्न हैं···।' पर इसी क्रम में वे इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि 'हिन्दी के अधिकांश लेखक अपने को इसी यथार्थवाद (सामाजिक यथार्थवाद तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थ-वाद) या यथार्थ-चित्रण की भूमिका पर लाने के लिए प्रयत्नशील हैं' (नई कविता, पृ० ४३)। वाजपेयीजी नई कविता में क्रमश: आती हुई समरसता पर संतोष व्यक्त करते हैं और विशेष रूप से उसकी मानववादी अवधारणा को सराहते हैं (वही, पृ० ७९)। यहां इस तथ्य की ओर संकेत करना हम जरूरी समझते हैं कि हिन्दी में कभी प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का शीतयुद्ध देखा गया था जिसे वाजपेयीजी 'दो अतिवादी दृष्टियां' कहते हैं। पर आगे चलकर जब इन्हीं रचनाकारों के बीच एक अधिक संतुलित मार्ग की तलाश की जाने लगी तो लगा कि आचार्यजी की टिप्पणियां कुछ परुष भले प्रतीत हों, पर नितांत अप्रासगिक नहीं थीं। इस दृष्टि से उन्होंने अपनी सीमाओं में, समीक्षक का दायित्व निबाहने का प्रयत्न किया, यह कहते हुए कि कवियों को राष्ट्रीय जीवन चेतना को स्वीकृति देनी ही होगी (नई कविता, पृ० ११५)।

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास आचार्य वाजपेयी की छोटी पुस्तक है जिसमें उन्होंने एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। यहां उनका आशय साहित्य के अध्येताओं को एक झलक भर देना है। इसीलिए उन्होंने अपना विवेचन प्रमुख धाराओं, प्रवृत्तियों एवं श्रेष्ठ रचनाकारों तक सीमित रक्खा है, वह भी संक्षेप में। पर यहां वाजपेयीजी की इतिहास-दृष्टि सजग है। आरंभ में ही वे यह व्यक्त करते हैं कि 'हिन्दी भाषा का साहित्य भारत की जातीय और राष्ट्रीय आशाओं, आकां-क्षाओं और स्थितियों को जानने का अद्वितीय साधन है।' अथवा 'भारतीय साहित्य की मूल-रागिनी समूह-मुखी है,···हिन्दी साहित्य भी इसी परम्परा का पालन

करता है। देश-काल की स्थिति के अनुरूप जनता की चितवृत्ति का प्रतिबिंब हिंदी में आदिकाल से ही मिलता है। समूह की ध्वनि जब-जब बदलती है, साहित्य में भी परिवर्तन हुआ है।' ये धारणाएं प्रमाणित करती हैं कि रचना की स्वतंत्र सत्ता के हिमायती होते हुए भी वाजपेयीजी उसे समाज-सापेक्ष मानते हैं और रचनाकार से लोकोन्मुखता की मांग करते हैं। उनका आग्रह यह कि सब कुछ एक सौन्दर्यपूर्ण कलाकृति के रूप में व्यक्त होना चाहिए।

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास लिखते हुए आचार्य वाजपेयी उस सामाजिक-सांस्कृतिक पीठिका का संकेत करते हैं जिस पर रचना स्थिति है। वीरगाथा-काल को वे 'घोर राजनीतिक हलचल तथा अशान्ति का युग' कहते हैं। अपनी उदार दृष्टि का परिचय देते हुए वे 'हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर [आदान-प्रदान' के रूप में अमीर खुसरो का विशेष उल्लेख करते हैं: 'हम खुसरो की कविता में युग-प्रवर्त्तन का बहुत कुछ पूर्वाभास पाते हैं।' इसे आगे बढ़ाते हुए वे 'भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के मिश्रण' की बात कहते हैं और संत कवियों की विशिष्ट भूमिका स्वीकारते हुए लिखते हैं: 'उनके संदेशों में जो महत्ता है, उनके उपदेशों में जो उदारता है, उनकी सारी उक्तियों में जो प्रभावोत्पादकता है, वह निश्चय ही उच्चकोटि की है' (हि० सा० का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १७)। सांस्कृतिक समन्वय के रूप में सूफ़ी काव्य तथा गुरुनानक का विशेष उल्लेख हुआ है। रीतिकाल की चर्चा संक्षेप में करने के बाद वाजपेयीजी जब अपने प्रिय विषय आधुनिक काल पर आते हैं तब वे उसके आरंभ में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकारते हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जिन्हें वे 'नवीन प्रगति की पताका' कहते हैं। इस बदली मनोभूमि की चर्चा वाजपेयीजी एक राष्ट्रवादी की तरह करते हुए लिखते हैं कि 'उस काल की हिन्दी कविता में समाज सुधार और जातीयता का इतना दृढ़ प्रभाव पड़ चुका था कि उनके प्रभाव से मुक्त होकर रचना करना किसी कवि के लिए संभव नहीं था' (हि० सा० का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५५)। छायावाद को वाजपेयीजी 'नये युग के भाव-बोध का प्रतिनिधि काव्य' मानते हैं। वे प्रसाद में छायावाद का प्रवर्तन, निराला में बहुजन की छवि, पंत में मानवतावादी भावनाएं देखते हैं। हिन्दी साहित्य के अपने इतिहास को अद्यतन रूप देने के लिए उन्होंने प्रगतिवाद-प्रयोगवाद-नई कविता की भी चर्चा की है और तीसरा सप्तक तक को लिया है। उन्होंने अपना इतिहास एक आशावादी दृष्टिकोण के साथ समाप्त किया है: 'इसमें भावी उन्नति के बीज वर्तमान हैं जो समय पाकर अवश्य पल्लवित और पुष्पित होंगे।'

आचार्य वाज़पेयी की रचना-यात्रा प्रायः निबंधात्मक है: सूर, तुलसी से लेकर प्रसाद, निराला, पंत, प्रेमचंद और नई कविता तक। उन्होंने साहित्य के अनेक सैद्धान्तिक पक्षों पर विचार किया—भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों पर। उन्होंने

हमें हिन्दी साहित्य का एक संक्षिप्त इतिहास भी दिया। इसके अतिरिक्त उनका एक सम्पादक रूप है—सूरसागर तथा रामचरितमानस का संम्पादन। युवावस्था में ही उन्होंने 'भारत' (इलाहाबाद) जैसे पत्र का सम्पादन किया और उसे एक नया व्यक्तित्व दिया। वाजपेयीजी अंतिम क्षणों तक रचनाशील रहे, इसका प्रमाण है—नई कविता-संबंधी लेखमाला।

३. पत्रकारिता और सम्पादन

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी को समीक्षक रूप में इतनी प्रसिद्धि मिली कि उनके व्यक्तित्व की अन्य दिशाओं की ओर प्रायः हमारा ध्यान नहीं जाता। पर उन्होंने अपने लेखक-जीवन का आरंभ एक संपादक के रूप में किया था और उस समय के हिन्दी समाचारपत्रों के इतिहास में उनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इलाहाबाद से उन दिनों भारत नामक पत्र निकलता था जिसके संचालनमंडल में पं० मोतीलाल नेहरू तथा महामना पं० मदनमोहन मालवीय जैसे राष्ट्रनेता थे। १ सितंबर १९३० के अंक में सम्पादक के रूप में नन्ददुलारे वाजपेयी, एम० ए० का नाम दिया गया है। इस अंक में मुख्य शीर्षक है (बैनर) : 'महामना मालवीयजी आदि नेताओं को ६-६ मास की सजा। वाजपेयीजी के सम्पादकीय का शीर्षक है : 'दबा दिया जाय'। इसमें उन्होंने साम्राज्यवादी दमन का विरोध किया। ८ सितंबर के अंक में मुख पृष्ठ पर महात्मा गांधी के नाम जवाहरलाल नेहरू का पत्र उद्धृत है और उसका उत्तर भी। १९३० के केवल कुछ मुख्य शीर्षकों पर दृष्टि डालने से 'भारत' पत्र के राजनीतिक चरित्र का पता चल जाता है, राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों का परिचय देते हुए : बम्बई में लाठी चलने से सैकड़ों घायल (२२ सितंबर), पनवेल, मुरादाबाद में गोलियां चलीं (२९ सितंबर), पं० जवाहरलाल नेहरू शीघ्र रिहा होंगे (६ अक्टूबर), जुन्नेर में जंगलियों की पुलिस से मुठभेड़ (२० अक्टूबर)।

२७ अक्टूबर १९३० से भारत अर्धसाप्ताहिक हो जाता है और इस अंक का मुख्य शीर्षक है : 'राष्ट्रपति और कांग्रेस मंत्री दोनों गिरफ्तार।' 'पं० जवाहरलाल नेहरू फिर गिरफ्तार'। ३१ अक्टूबर अंक में सभी समाचार राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के हैं : राष्ट्रपति को दो साल की बड़ी सजा, पं० जवाहरलाल नेहरू को कड़ी कैद— राजद्रोह १८ मास, साल्ट एक्ट ६ मास और जुर्माना अलग। बम्बई में लाठियों की वर्षा। सैकड़ों के सिर फूटे। अनेक गिरफ्तार हुए। ३१ अक्टूबर का सम्पादकीय है : 'राजनीतिक कैदी।' १९३० के वर्ष में 'भारत' आज़ादी की लड़ाई की गतिविधियों का विवरण देता चलता है। ३ नवम्बर के अंक में 'दमन और अहिंसा' शीर्षक टिप्पणी है : 'अहिंसा आत्मा की शक्ति है, दमन पशु की

शक्ति है। आत्मशक्ति को पशुशक्ति क्षीण नहीं कर सकती।' १० नवंबर : बम्बई के हाईकोर्ट पर राष्ट्रीय झंडा। इलाहाबाद में जुलूस और नेताओं का आगमन। मुखपृष्ठ पर चित्र है : श्रीमती कस्तूरबा गांधी, सरदार पटेल, श्री सुन्दरलाल, जे० एन० साहनी तथा जवाहर सप्ताह के जुलूस का दृश्य। इसी क्रम में शीर्षक और समाचार हैं : बारदोली के हालात (१४ नवंबर), 'त्यागमूर्ति नेहरू कलकत्ता जा रहे हैं' (१७ नवंबर), बम्बई, कलकत्ता और कराची में हड़ताल, जुलूस और सभाएं (१७ नवंबर)। युक्तप्रांत में जवाहर दिवस, कितने ही लोग गिरफ्तार हुए (२१ नवंबर)। इसी अंक में विज्ञान विशारद सर सी० वी० रमण की पुरस्कार-प्राप्ति को लेकर सम्पादकीय है जिसमें 'प्रबल राष्ट्रीय आकांक्षाओं' की बात कही गयी है। २४ नवंबर के अंक में शीर्षक है : पूज्य मालवीयजी बीमार और इसी में जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन तथा डॉ० अम्बेडकर के चित्र हैं।

प्रमुख राजनीतिक खबरें देने के साथ 'भारत' का ध्यान इस ओर भी है कि आज़ादी की लड़ाई किन बातों से कमज़ोर हो सकती है। इस संबंध में २८ नवंबर के अंक में एक लेख है : 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' और सम्पादकीय टिप्पणी है : 'दो अद्भुत महान जातियां अपना भविष्य ढूंढ़ रही हैं। दोनों महान हैं···दोनों एक-दूसरे की अपेक्षिणी हैं, पूरिका हैं। दोनों मिलकर जगत् को रहने योग्य बना सकती हैं, उसके उच्चतम उद्देश्यों की पूर्ति कर सकती है। दोनों एक साथ संसार की प्रगति में सहायक हो सकती हैं, उसे आगे बढ़ाकर पूर्ण बना सकती हैं···।···गंगा-यमुना की भांति दोनों के विचार-प्रवाह एक-दूसरे से मिले। दोनों का सम्मेलन तो निस्संदेह हुआ···।'

'भारत' पत्र में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बराबर जोर दिया गया है इसके लिए ६-१-१९३१ का अंक देखा जा सकता है जिसमें मौलाना मुहम्मद अली की मृत्यु का समाचार है। मौलाना सा० की हिन्दू-मुसलमानों से अंतिम अपील : 'भेदभाव को दफ़ना दो और राष्ट्र की सेवा करो' (६-१-१९३१)। ६ अप्रैल १९३१ के अंक में हिन्दू-मुस्लिम दंगों का विरोध है और १७ अप्रैल १९३१ के अंक में 'राष्ट्रीय मुसलमान' शीर्षक से सम्पादकीय। २४ अप्रैल १९३१ के अंक में महात्माजी को उद्धृत किया गया है : 'हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना गोलमेज कान्फरेंस में जाना व्यर्थ है।' विचारणीय है कि १९३१ के आरंभ से ही 'भारत' हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देता है और बार-बार इस बात को दुहराता है। ५ नवंबर १९३१ के अंक में डॉ० सैयद महमूद के लखनऊ वाले भाषण का शीर्षक है : 'साम्प्रदायिकता को दूर करो।' इसी प्रकार २८ अप्रैल १९३२ के अंक में सम्पादकीय टिप्पणी है : 'काश्मीर में साम्प्रदायिकता का विरोध।' ६ जून १९३२ के अंक में साम्प्रदायिक रक्तपात पर क्षोभ व्यक्त किया गया है : 'बम्बई के मजहबी विद्वेष की लपट दो

सौ से ऊपर मनुष्यों की आहुति लेकर अभी ठंडी नहीं हुई, इतने में ही मद्रास, कर्नाल, अलवर आदि स्थानों से भी साम्प्रदायिक रक्तपात के समाचार आ पहुंचे हैं।' २१ अगस्त १६३२ के पत्र का मुख्य शीर्षक है: 'साम्प्रदायिक निर्णय पर राष्ट्र का असन्तोष।' पत्र का सम्पादकीय है: 'ऊधो आ गए' जिसमें साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध किया गया है और लगभग कई मास तक 'भारत' इस विषय पर बल देता है। १५ सितंबर का शीर्षक है: 'महात्माजी की प्रतिज्ञा : भूखे रहकर प्राण देंगे। अन्य शीर्षक हैं : साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा हिन्दू समाज का अंग-भंग, अछूतों को पृथक् निर्वाचन नहीं मिलना चाहिए, महात्मा गांधी द्वारा दमन की निंदा आदि (१५ सितम्बर १६३२)। इस प्रकार आचार्य वाजपेयी की उदार दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है। २७ अक्टूबर १६३२ में हिन्दू-मुस्लिम संधि चर्चा, ३० अक्टूबर के अंक में 'हिन्दू मुस्लिम ऐक्य सम्मेलन तथा ३ नवंबर १६३२ के अंक में कहा गया है : 'हिन्दू-सिक्ख-मुस्लिम ऐक्य सम्मेलन। तीर्थराज में त्रिवेणी संगम।'

'भारत' के १६३०, १६३१, १६३२ के अंकों से गुजरने पर हम एक युवा-सम्पादक को भारतीय राजनीति के लगभग साथ-साथ यात्रा करते देखते हैं। यहां हमें आचार्य वाजपेयी के राष्ट्रवादी विचारों का परिचय मिलता है। उनके पिता राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के साथ हजारीबाग जेल में थे और इस निमित्त वाजपेयीजी ने अपनी पुस्तक: 'नया साहित्य : नये प्रश्न' सम्मान्य और श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू को समर्पित की है। वाजपेयीजी पर गांधीवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव है और वे बराबर खादी के वस्त्रों का उपयोग करते थे। 'भारत' के माध्यम से उन्होने अपनी जिस राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन किया, उसे उनकी समीक्षा में भी देखा जा सकता है। उनकी सजग राष्ट्रीय चेतना बराबर इस बात का ध्यान रखती है कि रचना में राष्ट्रीय तत्त्व दुर्बल न होने पाएं। वे राष्ट्रीयता को वृहत्तर मानवीय दृष्टि के भीतर रखकर देखते हैं। उनकी एक पुस्तक का शीर्षक ही है : 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध।'

१ सितम्बर १६३० से १० नवंबर १६३२ तक आचार्य वाजपेयी ने 'भारत' का सम्पादन किया, दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक। आने के दो माह के भीतर ही उन्होंने इस पत्र को अर्धसाप्ताहिक का रूप दे दिया। 'भारत' के इस समय के अकों को देखने पर वाजपेयीजी के सम्पादक-व्यक्तित्व के कई रूप हमारे सामने आते है जिनमें प्रमुख हैं, उनकी राष्ट्रीय भावना। भारतीय राजनीति की दृष्टि से भी यह समय घटना-बहुल था और जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है: '१६३० में हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ वक्त के लिए देश की बढ़ती हुई सामाजिक शक्तियों के भी अनुकूल हो गया, जिससे उसे बड़ी ताकत मिल गई। उसमें वास्तविकता मालूम होने लगी और ऐसा लगने लगा कि मानो वह सचमुच

इतिहास के साथ कदम-ब-कदम आगे बढ़ रहा है' (संक्षिप्त मेरी कहानी : पृ० १८२)। 'भारत' आजादी की लड़ाई के साथ-साथ चलने वाले पत्रों में था और एक सम्पादक के रूप में वाजपेयीजी ने पत्र की राष्ट्रवादी नीति को प्रखर बनाए रखने का निरन्तर प्रयत्न किया। सम्पादकीय तथा समाचारों से उनकी राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण मिलता है। ६ फरवरी १९३१ के अंक में दुखद समाचार है : त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास। सम्पादकीय में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें 'वीर सेनापति और कर्मयोगी' कहा गया है। उनके शब्द उद्धृत किए गए हैं : 'मैं मृत्यु से नहीं डरता, केवल भारत को स्वतंत्र देखने के लिए जीवित रहना चाहता हूं। मैंने जन्म भर युद्ध किया है और मेरा विश्वास है कि मैं इस युद्ध में भी विजयी हूंगा।'

राष्ट्रीयता से जुड़े हुए कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न होते हैं जिनके बिना आजादी अधूरी रहती है। वाजपेयीजी की सजग दृष्टि इस ओर है; वे बराबर इनका उल्लेख करते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर उन्होंने बहुत बल दिया है और यहां तक कि हिन्दी-उर्दू एकता पर भी लेख हैं (१० अप्रैल १९३१)। १७ अप्रैल के अंक में 'राष्ट्रीय मुसलमान' शीर्षक सम्पादकीय में भी इसकी चर्चा है। वाजपेयीजी राष्ट्रीयता को बृहत्तर सामाजिक संदर्भों में रखकर देखते हैं। २५ मई १९३१ के अंक में महाकवि रवीन्द्र ने ७०वीं वर्षगांठ के अवसर पर जो सन्देश दिया, उसे उद्धृत किया गया है : 'भारत इस समय अपनी भाग्य की लिपि ठीक कर रहा है, उसकी मुक्ति के साथ मानव समाज की मुक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध है।' वाजपेयीजी ने रवीन्द्र को 'कवि मनीषी' कहकर सम्बोधित किया है। राष्ट्रीय भावनाओं के साथ-साथ 'भारत' को सामाजिक चेतना का भी ध्यान है। आजादी की लड़ाई में किसानों, मजदूरों, विद्यार्थियों और समाजवादी विचारधारा के लोगों की बातें प्रमुखता के साथ दी जाती थीं। १७ जुलाई १९३१ के अंक में 'रूस के मजदूर' (लेखक : श्री रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे) लेख छपा है। १ नवंबर १९३१ के अंक में सम्पादकीय है : 'किसान सत्याग्रह और सरकार।' इसी अंक में बिहार प्रांतीय छात्र सम्मेलन की विस्तृत रपट है : 'स्वाधीनता आ रही है।' २६ नवंबर १९३१ का सम्पादकीय है : 'अछूत।' ६ दिसंबर के अंक में एक लेख है : 'पूंजीवाद और समाजवाद का द्वन्द्व' जिसमें प्रश्न उठाया गया है कि परिवर्तन शांति से हो, या क्रांति से ? राष्ट्रीय आन्दोलन जिस तेजी से जनोन्मुखी हो रहा था, उसका संकेत 'भारत' देता है : 'इलाहाबाद जिले में लगानबंदी। एक लाख किसानों की प्रतिज्ञा।' और संपादकीय : 'फिर तूफ़ान' (१३ दिसम्बर १९३१)। अस्पृश्यों की समस्या की ओर 'भारत' ने बराबर ध्यान दिया और 'साम्प्रदायिक निर्णय' पर घोर असंतोष व्यक्त किया जिसमें हरिजनों के लिए अलग मतदान की व्यवस्था थी। इसे 'दलित वर्ग के लिए दुहरी चोट' कहा गया है (१४ अगस्त, १९३२)।

पत्र की नीतियां संचालन-मंडल द्वारा निर्धारित होती हैं, यह सही है पर उन्हें शब्दों में व्यक्त करने का कार्य सम्पादक करता है और यहीं उसके व्यक्तित्व की परीक्षा होती है। वाजपेयीजी ने 'भारत' की राष्ट्रवादी नीतियों को पूरी प्रखरता के साथ व्यक्त किया और उसमें सम झौतावादी रुझान के लिए गुंजायश नहीं है। वाजपेयीजी मूलतः साहित्य-क्षेत्र के व्यक्ति हैं, पर 'भारत' के सम्पादक रूप में उन्होंने अपने अधिक वैविध्य-भरे व्यक्तित्व का परिचय दिया। राजनीति को वे निरपेक्ष इकाई नहीं मानते और उससे जुड़े हुए सामाजिक-आर्थिक पक्षों की ओर भी ध्यान देते हैं। घटनाक्रम जिस तेजी से चलता है, उस पर उनकी दृष्टि एक सजग सम्पादक के रूप में रहती है। २० फरवरी १९३१ के अंक में सम्पादकीय है : 'अर्थ समस्या' जिसमें समाज के पिछड़ेपन पर टिप्पणी है। इसी प्रकार ३१ जुलाई १९३१ का सम्पादकीय है : 'मैं नौकरी चाहता हूं' जिसमें कहा गया है : 'प्रत्येक सभ्य समाज का यह पहला कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए भोजन-आच्छादन की अनिवार्य आवश्यकता को पूरी करे' (३१-७-१९३१)। १३ दिसंबर १९३१ के अंक में टिप्पणी है : 'यूरोप का नैतिक और भौतिक दिवाला।' इस प्रकार 'भारत' में यद्यपि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के समाचारों को प्रमुखता दी जाती थी, पर उसे केवल सूचना के रूप में मुद्रित नहीं किया जाता था। संपादकीय लेखों, समाचारों से स्पष्ट है कि वाजपेयीजी पूरी सजगता के साथ स्थितियों पर टिप्पणी करते हैं और उस समय को देखते हुए वे पर्याप्त निर्भीक हैं।

आचार्य वाजपेयी मूलतः साहित्य क्षेत्र के व्यक्ति हैं और इसीलिए 'भारत' में आने के कुछ समय बाद से ही उन्होंने उसमें अपने समय की रचनाशीलता को स्थान देना आरम्भ किया। साथ ही 'भारत' की भाषा चलताऊ पत्रकारिता की भाषा नहीं है, उसमें साहित्यिक पुट मौजूद हैं—समाचारों में, सम्पादकीय में। जब महात्मा गांधी अनशन करने जा रहे थे, उस समय का शीर्षक है : 'गांधीजी मर गए, तो जिन्दा कौन रहेगा' (१८ सितम्बर १९३२)। इसी क्रम में गांधीजी के अनशन आरंभ होने का समाचार है। 'अखण्ड व्रत आरम्भ' (२२ सितंबर १९३२)। और इसी में श्री जयप्रकाश नारायण के कारावास का समाचार है : 'कांग्रेस आन्दोलन का मस्तिष्क : श्री जयप्रकाश नारायण को सजा' (२२ सितम्बर १९३२) १० नवम्बर १९३० के अंक में सरदार वल्लभ भाई पटेल के इलाहाबाद-आगमन की सूचना है : 'इलाहाबाद में बारदोली का वीर' (१०-११-१९३०)। भाषा और अभिव्यक्ति का ए स्तर उस समय के 'भारत' के अंकों में देखा जा सकता है और इस दृष्टि से प्रमुख समाचारों के शीर्षक, सम्पादकीय तथा अनाम टिप्पणियां विशेष रूप से विचारणीय हैं। वास्तविकता यह है कि आगे चलकर आचार्य वाजपेयी के अध्यापक तथा समीक्षक रूप को इतनी प्रमुखता मिल गई कि उनका भारत के सम्पादक वाला रूप परिपार्श्व में चला गया। पर यही वह समय है

जब उनका व्यक्तित्व एक रूपाकार ग्रहण करता है।

आचार्य वाजपेयी ने धीरे-धीरे 'भारत' के साहित्यिक पक्ष को पुष्ट करने का प्रयत्न किया। उस समय हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य छायावाद पर तरह-तरह के प्रहार हो रहे थे और वाजपेयीजी ने उसके सचेत पैरवीकार के रूप में काम किया। बनारसीदास चतुर्वेदी के 'साहित्यिक सन्निपात' का विरोध करते हुए वाजपेयीजी ने 'वर्तमान धर्म' शीर्षक से कवि निराला को समर्थन दिया (६-१०-१९३२)। 'भारत' के माध्यम से उन्होंने छायावाद के सम्बन्ध में प्रचारित अनेक भ्रांतियों के निवारण का प्रयत्न किया और उसका वास्तविक सर्जनात्मक स्वरूप स्पष्ट किया। छायावाद की व्याख्या के साथ प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि के विषय में उनका विवेचन भी 'भारत' के माध्यम से हुआ। इसकी अधिकांश सामग्री 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' पुस्तक में उपलब्ध है। प्रसाद, निराला की कई महत्त्वपूर्ण रचनाएं इसमें प्रकाशित हुईं। २४ मार्च १९३२ के होलिकोत्सव अंक में प्रसाद की कविता है : 'समुद्र तट की ऊषा' : आंखों में अलख जगाने को यह आज भैरवी आई है (२४-३-१९३२)। इसी प्रकार निराला का विचारोत्तेजक लेख हैं : साहित्य और भाषा (२५-२-१९३२)। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत का एक अंश : 'उर्मिला मिलन' शीर्षक प्रकाशित हुआ (९-६-१९३२)। इसमें आचार्य वाजपेयीजी की टिप्पणी भी है जिसमें उन्होंने कविता में चित्र की पूर्णता, सुन्दर चरित्र विकास, उत्कृष्ट सृष्टि की सराहना की है।

'भारत' एक प्रकार से हिन्दी में छायावाद को स्थापित करने का प्रयत्न करता है और स्वाभाविक है कि वाजपेयीजी वाद-विवाद का केन्द्र बनते हैं। स्थिति यह आती है कि उन्हें 'भारत' पत्र छोड़ना पड़ता है, पर वे अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहते हैं। 'भारत' में वाजपेयीजी की कुछ कविताएं अनाम प्रकाशित हुई। 'चित्रकार के प्रति' कविता के कुछ अंश हैं : 'एक चित्र खींचो' जिसमें हो एक पथिक गतिशील/उसकी मुद्रा कुछ ऐसी हो जैसे अभी चला हो/पथ सपाट सा रहे, दिखा दो क्षितिजहीन आकाश/हल्के रंग भरो परिचय में लिखो 'जगत' का शब्द/ रेखा-चित्र एक बूढ़े का खीचो विस्मयहीन,पौरुषरहित विराग दिखाओ शक्तिरहित अनुराग/एक लालसा रहे यंत्र-सी चलती पथ-भूली सी / स्थूल शरीर चेतनावंचित यही आज का जीव' (२४-१२-१९३१)। आचार्य वाजपेयी का १३ फरवरी १९३१ का सम्पादकीय : **'साहित्य का विकास'** विशेष रूप से विचारणीय है। इसमें **साहित्यिक साम्यवाद** शब्द का प्रयोग किया गया है : 'जहां राजनीति में और समाज में चतुर्दिक जाग्रति देख पड़ती है वहां साहित्य का एक विशाल समुदाय अचेत होकर सो रहा है।...विचारवान साहित्यिकों का यह कर्तव्य होगा कि वे व्यक्तिगत रीति से अथवा संघबद्ध होकर जैसे भी हो उपर्युक्त लक्ष्य (साहित्यिक साम्यवाद) की ओर आगे बढ़ें और आगामी भारतीय साहित्य को

देश की उच्च परम्परा के तथा युग की गति के अनुकूल बनाने का उद्योग करें' (१३-२-१९३१)। १९३१ को देखते हुए आचार्य वाजपेयी द्वारा 'साहित्यिक साम्यवाद' शब्द का उपयोग उन लोगों के आक्षेप का उत्तर भी है जो उन्हें अप्रगतिशील घोषित करना चाहते हैं।

आचार्य वाजपेयी ने 'भारत' के माध्यम से हिन्दी स्वच्छन्दतावाद, छायावाद की लड़ाई युवावस्था में लड़ी और उनकी इस ऐतिहासिक भूमिका को डॉ० रामविलास शर्मा जैसे मार्क्सवादी ने भी स्वीकारा है। डॉ० निर्मला जैन की टिप्पणी है : 'नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रबल विरोधों के रहते भी छायावादी काव्य का उद्‌घाटन कर उसके महत्त्व-प्रतिपादन का हौसला दिखाया' (हिन्दी आलोचना : बीसवीं शताब्दी, पृ० ४७)। वास्तव में वाजपेयीजी के समीक्षक-व्यक्तित्व का आरंभिक निर्माण 'भारत' के माध्यम से हुआ और उन्होंने इस पत्र की राजनीति के साथ साहित्य की अभिव्यक्ति का भी मंच बनाया। यहां उस समय की रचनाशीलता का स्पन्दन दिखाई देता है। पर अपनी साहित्यिक प्रतिबद्धता का मूल्य उन्हें हर स्वतन्त्रचेता पत्रकार और लेखक की तरह चुकाना ही पड़ा। वे अपनी प्रतिबद्धताओं को तिलांजलि देने के लिए तैयार न थे। ३ नवम्बर को उनकी टिप्पणी है : 'साहित्य में सरल का धर्म' जिसमें वे 'विचाररहित भावुकता' का विरोध करते हैं, कहते हैं : 'हमारे हिन्दी समाज की भावुकता इतनी बढ़ गई कि अब और अधिक बढ़ना आपादजनक होगा' (३-११-१९३२)। यह उनके लिए भी उत्तर है जो हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को केवल भावुकता के पर्याय रूप में देखने के आदी रहे हैं। वाजपेयीजी ने अपने लेखन में उसके बौद्धिक, मूल्यगत, मानवीय आधार स्पष्ट किए हैं। ३ नवम्बर की यह टिप्पणी पूर्वाभास है और १० नवंबर १९३२ को उन्होंने 'भारत' के सम्पादक पद से त्याग-पत्र दे दिया। इस समय 'अवसर ग्रहण' शीर्षक से जो बातें आचार्य वाजपेयी ने १९३२ में कही थीं उससे उनके निर्भय चरित्र पर प्रकाश पड़ता है : 'दो वर्षों से अधिक 'भारत' के सम्पादक पद पर काम करने के उपरान्त आज मैं अवसर ग्रहण कर रहा हूं। कारण ? कारण की इस विश्ववैचित्र्य में क्या कमी है ? किन्तु मुझे वे सब कारणों के तार टूटे हुए से खिन्न-खिन्न बोलते से जान पड़ते। मैं वह स्वर नहीं चाहता जिसमें से अशेष कार्य-कारणों के तार एकाकार होकर बजते हैं, मुझे तो वह विश्ववीणा अच्छी लगती है। उस अशेष को लेकर शेष की मैं चिन्ता नहीं करता।···मेरी राजनीति मेरी परिस्थिति की उपज है। उसे मैंने जीवन की आवश्यकता समझकर अर्जित किया है।···साहित्य मेरे जीवन की अमूल्य वस्तु है। उसमें मैं समझौते की गुंजायश बहुत कम रखता हूं क्योंकि मैं जीवन को पंगु नहीं बना सकता।···जो कुछ मैं सत्य समझता हूं उसके लिए मैं अकेला ही अपने को पर्याप्त पाता हूं' (१०-११-१९३२)। वाजपेयीजी को साहित्य के लिए 'भारत'

से हटना पड़ा।

आचार्य वाजपेयी एक बार फिर काशी लौटे जहां उन्होंने **सूरसागर** का सम्पादन कार्य आरम्भ किया। इसकी सामग्री कवि श्री जगन्नाथ रत्नाकर ने संगृहीत की थी पर उनके निधन के कारण इसके सम्पादन का कार्य आचार्य वाजपेयी को करना पड़ा। इस कार्य में चार वर्ष से अधिक का समय लगा, १९३३ के अंत से लेकर १९३७ तक। अपनी संक्षिप्त भूमिका में वाजपेयीजी ने अपने कार्य की सीमाओं को स्वीकार किया है, जैसे पाद टिप्पणियों के माध्यम से दी जाने वाली विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों की सूचना, राग-रागिनियों सम्बन्धी निर्देश अथवा उच्चारण संकेत आदि की कमी। उन्हें इस बात का विशेष खेद है कि 'शोधपूर्ण प्रशस्त भूमिका' भी नही दी जा सकी है। रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा-व्याकरण-सम्बन्धी जो निर्देश दिए थे, उनके उपयोग का प्रयत्न अवश्य किया गया है। आचार्य वाजपेयी द्वारा सम्पादित सूरसागर का अपना महत्त्व है, यद्यपि इसके बाद कई अन्य व्यक्तियों ने भी इसका सम्पादन किया। वाजपेयीजी ने इस सम्पादन से सूर के व्यक्तित्व को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया क्योंकि इसमें पदों की संख्या पर्याप्त है : पांच हजार के आस-पास। जहां तक सूर-काव्य के विवेचन का प्रश्न है, उन्होंने 'महाकवि सूरदास' नामक अपनी पुस्तक के द्वारा इस इच्छा की पूर्ति की।

१९३७ से १९३९ तक आचार्य वाजपेयी गीता प्रेस, गोरखपुर में थे जहां उन्होंने **रामचरितमानस** का सम्पादन किया। मानस के कई संस्करण होते हुए भी गीता प्रेस का रामचरितमानस संस्करण सामान्यजन में सर्वाधिक लोकप्रिय है। पाठ के सम्बन्ध में 'मानसांक' वर्ष १३, अंक १, संवत् १९५९ (अगस्त १९३८) में श्री चिम्मनलाल गोस्वामी तथा श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का एक संयुक्त निवेदन प्रकाशित हुआ जिसमें 'पाठ के सम्बन्ध में निवेदन' किया गया है। वाजपेयीजी ने उन कठिनाइयों का संकेत किया है जो प्राचीन ग्रन्थों, विशेषतया रामचरितमानस के सम्पादन में आती हैं जैसे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न शब्दों के तद्भव, तत्सम रूपों का है। यहां तद्भव रूप स्वीकारे गए हैं क्योंकि सम्पादकीय तर्क है कि कवि ने 'भाषा' अथवा प्राकृत को स्वीकृति दी है। वाजपेयीजी ने काफी विस्तार से भाषा-संबंधी प्रश्नों पर विचार किया है और अपने तर्क दिए हैं। अकारान्त-उकारान्त, सानु-नासिक प्रयोग, संयुक्ताक्षर, क्रियाएं आदि की चर्चा उन्होंने की है। इससे वाजपेयीजी का एक दूसरा रूप हमारे सामने आता है—सावधान सम्पादक का जो पाठ को यथासंभव वैज्ञानिक बनाए रखना चाहते हैं ताकि ग्रन्थ की प्रामाणिकता बनी रहे। इस सम्बन्ध में अकारान्त-उकारान्त के प्रयोग को लें। वाजपेयीजी का कहना है कि 'कुछ आधुनिक प्रतियों में उकार के प्रयोग को निरर्थक समझकर उसका सर्वथा बहिष्कार कर दिया गया है। हमारी समझ से यह उचित नहीं है।

क्योंकि प्रथम तो ये प्रयोग प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं। अतः अनावश्यक नहीं कहे जा सकते। दूसरे इनसे शब्दों के रूप, लिंग, वचन, कारक आदि के समझने में बड़ी सहायता मिलती है।'

सूरसागर और रामचरितमानस का सम्पादन आचार्य वाजपेयी के व्यक्तित्व का विस्तृत आयाम बताता है। 'सुर सुषमा' नाम से उनका एक छोटा संकलन भी प्रकाशित हुआ था जो काफी लोकप्रिय हुआ। उन्होंने गोरखपुर से प्रकाशित 'स्वदेश' के विजयांक का भी सम्पादन किया जिसकी सूचना निरालाजी को लिखे गए उनके १७-१०-१९२८ के पत्र से मिलती है (निराला की साहित्य-साधना : तृतीय खंड, पत्र सं० १२९)। आचार्य वाजपेयी के सम्पादन का एक रूप हमें 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से देखने को मिलता है, यद्यपि साहित्यिक पत्रिकाओं, वह भी समीक्षा की पत्रिकाओं की एक सीमा होती है और सम्पादक उसमें अपना व्यक्तित्व पूरी तरह प्रक्षेपित नहीं कर सकता। 'भारत' और 'आलोचना' के सम्पादन में मौलिक अन्तर है। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित इस पत्रिका का सम्पादन इसके पूर्व प्रयाग से होता था जिसके सम्पादन मण्डल में 'परिमल' संस्था से जुड़े हुए लोग थे। संभवतः यह समझा गया कि पत्रिका दक्षिण पंथ की ओर अधिक झुक रही है, इसीलिए एक मध्यमार्गी अकादमिक व्यक्ति को इसे सौंप दिया जाय। वाजपेयीजी ने अप्रैल १९५६ के १८वें अंक से 'आलोचना' का सम्पादन-भार संभाला और अप्रैल १९५९ के २६वें अंक तक इसका निर्वाह किया। बाद में पत्रिका को वामपंथी सम्पादक मिले—श्री शिवदान सिंह, डॉ० नामवर सिंह।

आलोचना के इन तीन वर्षों में आचार्य वाजपेयी ने पत्रिका को एक विस्तृत आयाम देने का प्रयत्न किया। उसमें भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्यशास्त्र एवं रचनाशीलता, हिन्दी साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, सामयिक रचना आदि से सम्बद्ध लेख विशेष रूप से देखे जा सकते हैं। सबसे अधिक विचारणीय है आचार्यजी के वे सम्पादकीय जिसमें उन्होंने शास्त्रचर्चा से लेकर नई कविता तक के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस बीच नाटक और काव्यालोचन के आलोचना विशेषांक भी प्रकाशित हुए। आचार्यजी अपने पहले सम्पादकीय (अंक १८) में समीक्षा के सन्दर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल उठाते हैं। वे समीक्षा को पारिभाषित करते हुए कहते हैं कि 'साहित्य समीक्षा अन्ततः विचार-जगत् की वस्तु है' और इस प्रकार उनका आग्रह बौद्धिक प्रतिक्रियाओं पर है। वे इस बात पर खेद व्यक्त करते हैं कि 'मतवादों की अधिकता और कट्टरता' के कारण साहित्य क्षेत्र में 'खण्ड दृष्टि' बढ़ रही है और विचार-स्वातन्त्र्य संकटग्रस्त हो रहा है। वे रचना-समीक्षा के बीच उचित संतुलन की मांग करते हैं और समीक्षा के गहन दायित्व पर बल देते हैं। स्पष्ट है कि आचार्यजी अपने समय की समीक्षा से बहुत सन्तुष्ट नहीं हैं और

'आलोचना' पत्रिका को एक सही मंच के रूप में विकसित करना चाहते हैं। आचार्यजी का पहला सम्पादकीय काफी लम्बा है, जिसमें उन्होंने कई मुद्दे उठाए हैं: समीक्षा की मौजूदा हालत, समीक्षा का दायित्व, रचना की स्थिति और समीक्षा की प्रक्रिया आदि। पश्चिम की नवीनतम वैचारिक हलचलों का संकेत करते हुए वे भारतीय परिदृश्य पर आते हैं और उन्हें इस बात का दुख है कि 'हिन्दी के साहित्यिक प्रतिमान अब तक अनिश्चित और डांवाडोल बने हुए हैं। सर्वमान्य और सर्वस्वीकृत तथ्यों की अतिशय कमी है।' वे साहित्य के व्यवस्थित विकास के लिए इस स्थिति को बहुत घातक मानते हैं और 'आलोचना' के माध्यम से एक संतुलन की तलाश का काम करते है।

साहित्यिक सम्पादन का एक रूप वह है जिसमें सम्पादक अपनी निजी अभिरुचियों से चले और सम्पादकीय के अतिरिक्त सामग्री-चयन में भी इसी रुचि से काम ले। इससे पत्रिका की एक निश्चित वैचारिक तस्वीर तो दिखाई पड़ेगी पर सम्पादन की वस्तुपरकता के अभाव में उसके एकांगी हो जाने का खतरा भी है। दूसरी प्रणाली यह कि जागरूक सम्पादक अपने पत्रों में अपनी बात कहने के लिए स्वतन्त्र है—कमलेश्वर या किसी और की तरह पर सामग्री के संचयन में इसे प्रतिभाओं को स्वीकृति देनी होगी, सम्पादक से वैचारिक मतभेद कितना ही क्यों न हो। इस प्रकार का सम्पादन एक वैचारिक उदारता की मांग करता है, पर देखना यह होगा कि पत्रिका संकलनात्मक बनकर न रह जाय। उसमें व्यर्थ की भरती की चीजें न आ जायं, क्योंकि पेशेवर व्यावसायिक लेखन के जमाने में इसका खतरा है। सामग्री प्राप्त कर सकने मे सम्पादक को कठिनाइयां होती हैं, पर इन सीमाओं के भीतर वाजपेयीजी ने प्रयत्न किया कि 'आलोचना' पत्रिका को एक वैचारिक स्तर प्रदान किया जाय ताकि उसे एक अर्थवत्ता मिले।

आचार्य वाजपेयी के सम्पादकीय महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए सामग्री पर विचार करने से पूर्व उन पर एक दृष्टि डालना उपयोगी होगा। क्रमशः इनके शीर्षक है: समीक्षा, नाटक, नई कविता, सामयिक परिवेश, समाज और साहित्य, प्रगति की ओर, नये उपन्यास, आधुनिक काव्यचिन्तन, सिद्धान्तों की प्रगति। इन अधिकांश से गुजरने पर ज्ञात होता है कि आचार्यजी अपने समय-समाज से जुड़े हुए व्यक्ति है और सामयिक रचनाशीलता के प्रति उनकी अपनी चिन्ताएं हैं। सहमति-असहमति का प्रश्न दूसरा है। सूर, तुलसी का सम्पादन तथा मूलतः हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य के साथ यात्रा करते हुए वे नई कविता तक आते है। उनकी चिता है कि रचना 'आत्मजीवी और असामाजिक' न बन जाय, इसलिए उसे 'विशाल सामाजिक जीवन और उसके घात-प्रतिघातों' से आंख मिलानी होगी, (आलोचना : २०)। प्रश्न सैद्धान्तिक स्तर से उठाया गया है और फिर एक बुजुर्ग जैसी सलाह दी गई है। 'सामयिक परिवेश' शीर्षक सम्पादकीय में स्वातंत्र्यो-

त्तर हिन्दी रचनाशीलता पर विचार करते हुए वे उन स्थितियों का संकेत करते हैं जिसमें नये मध्यवर्ग के लेखक को काम करना पड़ रहा है और उनकी फिर वही चिन्ता है कि 'कृतियां राष्ट्रीय उपयोग से दूर होती जा रही हैं' (आलोचना : २१)। वे सामाजिक यथार्थवादी और व्यक्तिवादी जीवन दृष्टियों की टकराहट का जिक्र करते हैं और उन्हें अपूर्ण मानते हैं। साहित्य के प्रति वाजपेयीजी की दृष्टि व्यापक है और वे 'समग्रता' तथा 'गाम्भीर्य' जैसे शब्दों का उपयोग करते हैं। आज गोल्डमान के शब्दों में प्रायः समग्रता अथवा 'टोटेलिटी' का प्रयोग किया जाता है, पर आचार्यजी ने यह बात १९५७ में कही थी। इतना ही नहीं वे 'साहित्यिक मूल्यों' जैसे शब्दों का उपयोग करते हैं जिससे रचना के गहरे सांस्कृतिक दायित्व का बोध होता है।

जिस समय आचार्य वाजपेयी 'आलोचना' पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे, उस समय रचना में एक प्रकार का शीतयुद्ध चल रहा था और सामाजिक यथार्थ तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर दो दृष्टियां आमने-सामने मुठभेड़ की मुद्रा में थीं। लगता है वाजपेयीजी को इस स्थिति का एहसास है क्योंकि उन्होंने कई बार, कई रूपों में इसका उल्लेख किया है। अपने सम्पादकीय 'समाज और साहित्य' की शुरुआत ही उन्होंने इस प्रश्न से की है। उनका स्पष्ट मत है कि 'प्रत्येक स्वातंत्र्य के साथ उतनी ही मात्रा में दायित्व की भावना रहा करती है' (आलोचना २२)। वाजपेयीजी के लिए साहित्य कागज रंगना भर नहीं है, वह अधिक दायित्वपूर्ण कार्य है। उनके शब्दों में : 'साहित्य से हमारा आशय उन विशिष्ट और प्रतिनिधि रचनाओं से है जो किसी युग के भावात्मक जीवन का प्रतिमान होती हैं, जो समाज और सामाजिक जीवन को भली या बुरी दिशा में ले जाने का प्रबल सामर्थ्य रखती हैं।' उनकी राष्ट्रीय भावना पश्चिम के अतिरिक्त प्रभावों का विरोध करती हैं। पर इन तीखी टिप्पणियों के बावजूद भविष्य के प्रति उनकी आस्था है : 'हमारे साहित्य में ऐसे संकल्पवान लेखकों की कमी नहीं है जो विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में नये आलोक की योजना कर रहे है।' उनका कथन है : 'ऐसे ही आस्थावान और सन्तुलित जीवन दृष्टि वाले लेखकों के हाथों में हमारा साहित्य और सामाजिक जीवन सुरक्षित है' (आलोचना : २२)।

आचार्य वाजपेयी साहित्य का एक नया समीक्षाशास्त्र पाना चाहते है और उसकी तलाश करते हुए विश्व की रचनाशीलता, विशेषतया भारतीय साहित्य को अपने सामने रखते हैं। सामयिक परिवेश और लेखन से गुजरते हुए वे जब अपना किंचित असंतोष व्यक्त करते हैं तो उनका आशय लेखन का निषेध करना नहीं है। उन्हें उन विषम सामाजिक स्थितियों का एहसास भी है जिसमें नया रचनाकार काम कर रहा है, पर उनकी सजग राष्ट्रीय चेतना भारतीय साहित्यकार से दायित्वपूर्ण सृजन की मांग करती है। आधुनिक काव्यचिन्तन तथा सिद्धांतों की

प्रगति' (आलोचना : २५, २६) में वाजपेयीजी की प्राथमिक चिन्ता है कि साहित्य के मूल्यांकन के लिए जो विपुल सामग्री उपलब्ध है, उसका उपयोग आज के संदर्भ में कैसे किया जाय। इसके लिए वे एक ऐसी सजग दृष्टि की मांग करते हैं जो देखे कि उसमें हमारे काम की कौन-सी सामग्री है और उससे हम किस प्रकार लाभान्वित हो सकते हैं। वाजपेयीजी ने काव्यालोचन विशेषांक के लम्बे सम्पादकीय में भारतीय काव्यचिंतन पर विचार करते हुए नए लेखकों पर आक्षेप किया है कि वे अपनी परम्परा का उपयोग नहीं करना चाहते और बाहर की ओर अधिक देखते हैं। इसी प्रकार वे बौद्धिकता को एक सीमा से अधिक नहीं खीचना चाहते क्योंकि उनका विचार है कि 'साहित्य की कोरी बौद्धिक भूमि ही नहीं होती। उसमें मानव-व्यक्तित्व के अनेक अन्य तत्त्व भी सम्मिलित रहते हैं' (आलोचना : २५)। साहित्य के सामयिक परिवेश पर दृष्टि डालते हुए वे आगामी अंक २६ में 'वाद-बहुलता' की चर्चा करते हैं : यथार्थवाद, प्रगतिवाद, अतियथार्थवाद, प्रतीकवाद आदि और फिर पाश्चात्य प्रभाव का उल्लेख करते हैं। वे भारतीय जीवन से सामंजस्य की बात करते हुए कहते हैं : 'सैद्धान्तिक प्रगति और सृजन दोनों के ही नाम पर वर्तमान परिस्थिति हमारे 'स्वतंत्र चिन्तन' की मांग करती है' (आलोचना : २६)।

आचार्यजी के सम्पादनकाल में भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य चिन्तन और रचना के सम्बन्ध में जितनी सामग्री प्रकाशित हुई, वह महत्त्वपूर्ण है। उनकी आकांक्षा रही है कि हमारा साहित्य संसार के सर्वोत्तम चिन्तन और रचनाशीलता से लाभान्वित हो और अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित करने का प्रयत्न करे। आचार्य वाजपेयी के सम्पादन-काल में 'आलोचना' पत्रिका को एक सन्तुलित आधार मिला, इसमें संदेह नहीं। यद्यपि यह भी स्वीकारना होगा कि उनकी दो टूक बातों के कारण नवलेखन से जुड़े लोग उससे किनाराकशी किए रहे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ० रामविलास शर्मा जैसे लेखकों का सहयोग उसे मिला। आचार्य द्विवेदी का लंबा लेख नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा दो खण्डों मे प्रकाशित हुआ (आलोचना : २३, २४) जिसमें एक नयी दृष्टि से विचार किया गया : 'नाट्यशास्त्र ने स्पष्ट रूप से निर्देश किया है कि लोकधर्मी विधियों की कसौटी लोकजीवन ही है' (आलोचना : २३, पृ० २३)। डॉ० रामविलास शर्मा आचार्य वाजपेयी के समीपी रहे हैं और उनके सम्पादक होते ही उन्होंने पत्रिका के लिए 'कालिदास : स्थायी मूल्यों की समस्या' लेख भेजा जो इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुआ कि वह भारतीय साहित्य के सबसे स्थायी कवि हैं।' डॉ० रामविलास शर्मा ने अपने इस निबंध में महाकवि कालिदास पर नयी समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार किया है। वे उन्हें 'एक युग विशेष का कवि' कहते हैं, पर उन काव्य तत्त्वों की ओर विशेष संकेत करते हैं जो स्थायी हैं : 'उमा का

सौन्दर्य, वाल्मीकि का सात्विक क्रोध, इन्दुमती के लिए अज का शोक, भारत को धरती से कवि का प्रेम—ये सभी साहित्य के स्थायी तत्त्व हैं' (आलोचना : १८, पृ० २६)। डॉ० रामविलास का एक अन्य महत्त्वपूर्ण निबंध है : 'मार्क्सवाद और प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन'। इसमें वे स्पष्ट कहते हैं कि 'प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन में हमें मार्क्सवाद से यह सहायता मिलती है कि हम उसकी विषय-वस्तु और कलात्मक सौन्दर्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर उनका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं' (आलोचना : २३, पृ० ३८)।

'आलोचना' पत्रिका की सीमाएं हो सकती हैं, पर इसमें सन्देह नहीं कि रचना से जुड़े हुए महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर गंभीरता से विचार करने के लिए वाजपेयीजी ने इसे एक सन्तुलित मंच के रूप में विकसित करने का प्रयत्न किया। इसमें नये लेखन को स्वीकृति मिली और वाजपेयीजी को यह श्रेय है कि उन्होंने फणीश्वरनाथ रेणु के व्यक्तित्व को उसके सही सन्दर्भ में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रस्तुत प्रश्न के अन्तर्गत 'परती परिकथा' पर तीन आलोचनाएं प्रकाशित हुईं और स्वयं वाजपेयीजी ने इसी अंक में 'नये उपन्यास' शीर्षक सम्पादकीय में लिखा : 'परती परिकथा' में एक अधिक प्रौढ़ लेखक की भांति 'रेणु' ने राजनीतिक विचारधारा के बदले अधिक व्यापक राष्ट्रीय प्रगति को उपन्यास के केन्द्र में रखा है।···यह कृति अधिक तटस्थ और अधिक वास्तविक जीवन का आलेखन करती है' (आलोचना : २४)। दुखमोचन (नागार्जुन), गीतफरोश (भवानीप्रसाद मिश्र) उखड़े हुए लोग (राजेन्द्र यादव), बूंद और समुद्र (अमृतलाल नागर), अन्धा युग (धर्मवीर भारती), राजा निरबंसिया (कमलेश्वर) आदि की समीक्षाएं इसमें प्रकाशित हुईं।

'भारत' से लेकर 'आलोचना' तक की यात्रा में आचार्य वाजपेयीजी का जो सम्पादक-व्यक्तित्व उभरता है उसमें राष्ट्रीय चेतना और साहित्यिक चेतना का संयोजन है।

४. आचार्य वाजपेयी और स्वच्छन्दतावाद

आचार्य वाजपेयी को प्रायः स्वच्छन्दतावादी समीक्षक कहा जाता है, या अधिक-से-अधिक उसमें क्लासिकी शब्द और जोड़ दिया जाता है। यद्यपि पश्चिम में रोमांटिसिज़्म और क्लासिज़्म शब्द एक-दूसरे से विरोध में प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। स्वयं आचार्यजी ने अपने निबंध : 'स्वच्छंदता और परंपरा' में इन दोनों पर तुलनात्मक दृष्टि डालते हुए, यह विचार व्यक्त किया है कि 'दोनों में समीपता और समन्वय की भी संभावना है' (आधुनिक साहित्य, पृ० ३८८)। आचार्यजी की समीक्षा स्वयं भी इनके संयोजन का प्रयत्न करती दिखाई देती है। जहां तक जीवन दृष्टि, वैचारिकता, भावना-व्यापार, मानवीय आग्रह आदि का प्रश्न है वे रूमानी-स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को समर्थन देते हैं। पर रचना को कला और अभिव्यक्ति की जिन ऊंचाइयों पर पहुंचना चाहिए वहां वे क्लासिकी शिल्प के निकट हैं। इसीलिए आधुनिक काव्य के पक्षधर होते हुए भी, वे रचना में अराजक स्थिति का विरोध करते हैं। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य उन्हें इसलिए भी प्रिय है क्योंकि यहां अभिव्यक्ति का एक स्तर तो है ही, कला-शिल्प के कतिपय शिखर भी निर्मित हुए हैं।

स्वच्छन्दतावाद को लेकर आचार्य वाजपेयी की पहली टकराहट अपने यशस्वी गुरु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से हुई। इसे हम एक युवक-समीक्षक का रचनात्मक आत्मविश्वास कह सकते हैं और नयी रचनाशीलता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भी। उनका कथन है : 'छायावाद को हम पंडित रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली-विशेष नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक अस्तित्व और गहराई है' (जयशंकर प्रसाद : भूमिका, पृ० १२)। जब छायावाद पर चारों ओर से प्रहार हो रहे थे, उस समय वाजपेयीजी ने उसे अपना समर्थन दिया और यदि यह केवल भावात्मक अथवा प्रभाववादी स्तर पर होता तो उसकी उपयोगिता संदिग्ध होती। १९३६ में 'गीतिका' का प्रकाशन हुआ तो कविवर जयशंकर प्रसाद ने उसे आशीष दिया और वाजपेयीजी ने उसकी समीक्षा तथा टिप्पणियां लिखीं। उनका कथन है :

'निरालाजी की काव्यधारा उनके जीवन से अनुप्रेरित होने के कारण और भी सुनिर्दिष्ट और स्पष्ट-सी है। व्यापक जीवन से सहानुभूति, प्रत्येक स्थिति की स्वीकृति और उसी में सौन्दर्यान्वेषण का लक्ष्य रखते हुए निरालाजी का काव्यभाव प्रकट हुआ है' (गीतिका : समीक्षा, पृ० २१)। यह उन लोगों को उत्तर है जिन्हें व्यंग्य-व्यंग्य में हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को 'छायावाद' नाम दे दिया था और जो इसे जबरन अस्पष्ट, व्यक्तित्व-विहीन प्रमाणित करने पर उतारू थे। इसी प्रकार जब १९३९ में जयशंकर प्रसाद का निबंध संकलन : 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' प्रकाशित हुआ तो वाजपेयी ने उसकी लंबी भूमिका में प्रसादजी के मंतव्य को स्पष्ट किया जैसे, प्रसाद का कथन : 'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है' (काव्य और कला, पृ० ११) अथवा 'यथार्थ-वाद की विशेषताओं में प्रधान है, लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात' (वही, पृ० ८६)।

वाजपेयीजी ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद के लिए निरन्तर संघर्ष किया और इस दृष्टि से उनका रोल ऐतिहासिक है। इसे स्वीकारते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने उन्हें 'छायावाद के समर्थ आलोचक' कहते हुए लिखा है : '*अपने तरुण जीवन में ही वे निराला और प्रसाद के निकट सम्पर्क में आए। हिन्दी के* तमाम पुरानी-पंथी, प्रतिक्रियावादी लेखकों के कोलाहल की चिन्ता न करके उन्होंने छायावादी कवियों का प्रबल समर्थन किया' (आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : व्यक्ति और साहित्य, पृ० १४४)। हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, आधुनिक साहित्य, आधुनिक काव्य : रचना और विचार के अतिरिक्त जयशंकर प्रसाद, कवि निराला तथा कवि सुमित्रानन्दन पंत हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छाया-वाद को स्पष्ट करने के लिए रचे गए हैं। उन्होंने इस काव्य के साथ-साथ एक अंतरंग यात्रा की और वे इसके सर्वोपरि व्याख्याता और समर्थक के रूप में ख्यात हुए। डॉ० निर्मला जैन उन्हें 'हरावल' कहते हुए लिखती हैं : 'नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रबल विरोधों के रहते भी छायावादी काव्य के सौन्दर्य का उद्घाटन करके उसके महत्त्व-प्रतिपादन का हौसला दिखाया' (हिन्दी आलोचना : बीसवीं शताब्दी पृ० ४७)। वास्तव में आचार्य वाजपेयीजी को कई स्तरों पर छायावादी काव्य के लिए संघर्ष करना पड़ा। यहां तक कि उन्हें 'भारत' के सम्पादक पद से भी हटना पड़ा, पर प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी के व्यक्तित्व ने प्रमाणित किया कि वाजपेयीजी की आस्थाएं सही हैं।

छायावाद एक व्यंग्यात्मक नाम है जो उस समय स्वच्छंदतावादी काव्य को मिल गया था। जैसा कि मैंने अपनी पुस्तक : 'हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य' में *निवेदन किया है, यह एक असमर्थ नाम है, और उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ*

न्याय नहीं करता। निश्चय ही स्वच्छन्दतावाद अधिक समर्थ नाम है। आचार्य वाजपेयी के समय में स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, रहस्यवाद आदि कई नाम प्रचलित थे और स्थिति गड्डमगड्ड थी, स्पष्ट नहीं थी। वाजपेयीजी ने इस नयी काव्यधारा को सही सन्दर्भ में देखा जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे समर्थ समीक्षक ने अपनी पूर्ण सहानुभूति नहीं दी थी। इतना ही नहीं, शुक्लजी ने छायावाद को कलावाद, अभिव्यंजनावाद, नूतन रहस्यवाद, प्रतीकवाद आदि से जोड़कर उसे सच्चे स्वच्छन्दतावाद का श्रेय देने से इन्कार कर दिया। वाजपेयी ने इस आक्षेप का उत्तर दिया कि यह नई काव्यधारा-स्वच्छन्दतावाद अथवा छायावाद एक काव्य शैली मात्र है। वे पहले समीक्षक हैं जिन्होंने इस काव्य को उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक पीठिका में रखकर देखने-समझने का प्रयत्न किया। इसकी सीमाएं हो सकती हैं, पर उस समय को देखते हुए इसका रोल ऐतिहासिक था। आज जब समाजशास्त्रीय समीक्षा काफी विकसित हो चुकी है, तब भी वाजपेयीजी का यह विवेचन अपनी जगह सही और प्रामाणिक है कि इस काव्य के मूल में भारतीय नवजागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

छायावाद को समर्थन देते हुए वाजपेयीजी उसके विरोधियों के विषय में आक्रोश से कहते है कि : 'छायावाद और रहस्यवाद पर इनका आक्रमण नादिरशाही ढंग का है।'''ये साहित्य के एक युग-विशेष को हड़प जाना चाहते है। इस युग के साहित्य की हरी-भरी खेती पर ये कहर ढाते फिरते हैं।' इसी क्रम में वे इसे एक प्रकार की 'उछल-कूद से पैदा हुई अराजकता' कहते हैं और लिखते हैं कि 'छायावाद युग' को चाहे जिस नाम से पुकारिए, इसका एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। राष्ट्रीय इतिहास में जिन सुस्पष्ट प्रेरणाओं से यह उत्पन्न हुआ और जिस आवश्यकता की पूर्ति इसने की, उसकी ओर ध्यान न देना, आश्चर्य की बात होगी' (हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, विज्ञप्ति, पृ० १२)। इस सिलसिले में वे महायुद्ध के बाद की स्थितियों का संकेत करते हैं, विशेष रूप से देश की स्वतंत्रता का प्रश्न तथा नव-जागरण। इसी 'विज्ञप्ति' में वे लिखते हैं : 'उतने बड़े पैमाने पर न सही, किसी हद तक यह नया कला-आन्दोलन जो हिन्दी साहित्य में छायावाद के नाम से प्रसिद्ध है, यूरोप के 'रिनेसां या पुनरुत्थान आन्दोलन से समानता रखता है' (वही, पृ० १३)। वाजपेयीजी निकट पूर्ववर्ती काव्य से इस नये काव्य आन्दोलन का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'द्विवेदीकालीन राष्ट्रीयतावाद और छायावादी मानव ऐक्य की भावनाओं ने कैसी पृथक् काव्य-शैलियों को जन्म दिया, इसका एक स्थूल परिचय मैथिलीशरण गुप्त, निराला और प्रसाद की देश-प्रेम संबंधी कविताओं का अध्ययन करने पर मिल जाता है।' गुप्तजी में 'देश की स्थूल चौहद्दी' है, पर प्रसाद और निराला की पंक्तियों में 'प्राकृतिक और ज्ञानजन्य मानव ऐक्य का निर्देश'। इसे वे 'जीवन की वास्तविक सीमा के अन्तर्गत' रखकर देखते हैं और

उसे 'राष्ट्रीय जागरण की प्रभाती ध्वनि' कहते हैं।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य—छायावाद की सामाजिक-सांस्कृतिक पीठिका का संकेत करते हुए आचार्य वाजपेयी इस आक्षेप का उत्तर देने में सफल होते हैं कि वह केवल एक 'कला-आन्दोलन' है। महायुद्ध के बाद की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए वे आगे लिखते हैं : '...एक संघटित जातीयता का निर्माण, हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई आदि विभिन्न धर्मानुयायियों में एक अन्तर्यामी मानवसूत्र का अनुसन्धान, राष्ट्रों-राष्ट्रों के बीच खाइयां पाटना—महायुद्ध के पश्चात् अपने देश के सामने ये प्रधान प्रश्न थे। देश की स्वतंत्रता का भी कुछ कम प्रधान प्रश्न न था। पर वह जातीय और राष्ट्रीय एकता के आधार पर ही खड़ा हो सकता था और अन्तर्राष्ट्रीय मानवसाम्य का एक अंग बनकर ही शोभा पा सकता था। यह सम्मिलन और सामंजस्य की भावना भारतीय संस्कृति की चिरदिन की विशेषता रही है इसलिए महायुद्ध की शान्ति के पश्चात् ये प्रश्न सामने आते ही वह सांस्कृतिक प्रेरणा जाग उठी और तीव्र वेग से तत्कालीन काव्य और कलाओं में अपनी अभिव्यक्ति चाहने लगी' (हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी : विज्ञप्ति, पृ० १२-१३)। इस प्रकार वाजपेयीजी ने अपने ढंग से छायावाद के परिवेश और पीठिका को समझने का प्रयत्न किया। इसके मूल में उनका आशय यह भी प्रमाणित करना है कि वह कोई भावना-आन्दोलन भर नहीं है, उसकी वैचारिक पीठिका है। इस दृष्टि से 'आधुनिक साहित्य' की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है जहां उन्होंने 'नव्यतर प्रगति' शीर्षक से इस नयी रचनाशीलता की सामाजिक पीठिका की चर्चा की है। ये विचार 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' की तरह के हैं : 'महायुद्ध की परिस्थितियों ने हमारी जातीयता की कट्टर भावना को बहुत कुछ शिथिल कर दिया और अब हम उस भूमिका पर आ गये जब जातीय और प्रादेशिक सीमाओं से ऊपर उठकर विश्व की प्रगति को एक निगाह देख सकें।...हम मोटे तथ्यों से ध्यान हटाकर उनके प्रेरक सूक्ष्म उपकरणों को देखना चाहते थे। संक्षेप में नई संस्कृति और नवीन जीवन-दृष्टि के निर्माण की दिशा में हम अग्रसर हो रहे थे' (आधुनिक साहित्य : भूमिका, पृ० २१)। इस प्रकार वाजपेयीजी ने हिन्दी स्वच्छन्दतावाद-छायावाद की पीठिका को समझने-समझाने का प्रयत्न किया और यह स्वीकारते हुए भी कि उसमें पश्चिम की प्रेरणाएं हो सकती हैं, उसे मुख्य रूप से राष्ट्रीय जीवनधारा की उत्पत्ति घोषित किया। गांधीजी द्वारा जगाई गई नयी राष्ट्रीय चेतना को स्वीकारते हुए वे इस युग को 'मुख्यतः सामाजिक और साहित्यिक परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह का युग' कहते हैं (नया साहित्य : नये प्रश्न पृ० १४८)।

आचार्य वाजपेयी अपने समय के प्रचलित शब्द : स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, रहस्यवाद आदि को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें इस बात का भान है कि

'बहुधा छायावादी काव्ययुग की तुलना यूरोप के उन्नीसवीं शताब्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन से की जाती है, और अक्सर प्रसाद, निराला और पंत की समता में वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि का नाम लिया जाता है' (नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १४६)। पर वाजपेयीजी हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद के स्वतंत्र व्यक्तित्व की सतेज व्याख्या करते हैं—सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों प्रकार की समीक्षाओं के माध्यम से। वाजपेयीजी आधुनिक काव्य के विवेचन में प्रयुक्त होने वाले तीनों शब्द : स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, रहस्यवाद पर विचार करते हैं और इस दृष्टि से 'राष्ट्रीय साहित्य' में संकलित उनका निबंध महत्त्वपूर्ण है। वे स्वीकारते हैं कि 'वास्तव में हिन्दी का छायावादी काव्य स्वच्छन्दतावाद की भूमिका पर ही लिखा गया है और महादेवी की रहस्योन्मुख कविता भी स्वच्छन्दतावाद की व्यापक भूमिका पर ही आंकी जा सकती है। इस प्रकार आधुनिक छायावादी और रहस्यवादी काव्य रचनाएं स्वच्छन्दतावाद की ही विभिन्न शैलियां हैं। उन्हें स्वच्छन्दतावाद से पृथक् करके देखने की आवश्यकता नहीं हैं' (राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध, पृ० १०१)। इस प्रकार वाजपेयीजी स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में करते हैं और छायावादी काव्यशैली व ो स्वच्छन्दतावादी काव्य एक शाखा मानते हैं (राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध, पृ० १०४)। इसी निबंध में 'आध्यात्मिक सौन्दर्य बोध को छायावादी कविता का केन्द्रीय उपकरण' स्वीकारते हुए वाजपेयीजी उसे एक बिन्दु पर रहस्यवाद से अलगाते हैं कि 'छायावाद व्यष्टि सौन्दर्य बोध की भावना है और रहस्यवाद समष्टि सौन्दर्यबोध की भावना है। मानव जीवन की इकाइयों तथा प्रकृति के भीतर जो अध्यात्म तत्त्व की झलक देखते हैं, वे व्यष्टि सौन्दर्य बोध के ज्ञापक हैं, वे छायावादी हैं' (वही, पृ० १०५)। वाजपेयीजी ने 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध' में संकलित स्वच्छन्दतावाद, छायावाद-रहस्यवाद' नामक अपने निबंध में विस्तार से छायावाद और रहस्यवाद पर तुलनात्मक दृष्टि डाली है और कहा है कि छायावादी काव्य दृष्टि अधिक मानवीय है। अपने आशय को स्पष्ट करने के लिए वे कहते हैं कि निराला अधिक स्वच्छन्दतावादी, पंत छायावादी और महादेवी रहस्यवादी हैं और प्रसाद में एकाधिक प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं।

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद- छायावाद को उस समय परिभाषित करने का कार्य सरल नहीं था क्योंकि उस पर तरह-तरह के आक्रमण हो रहे थे। पर महादेवी का विवेचन करते हुए 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' में वाजपेयीजी ने लिखा है : 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है' (हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १६३)। इस निबंध में महादेवी के विवेचन के पूर्व रहस्यवाद की सैद्धान्तिक चर्चा है और जयशंकर प्रसाद के 'आंसू' काव्य को

'समरसता' (सुख-दु:ख का आध्यात्मीकरण) और अपरोक्ष आध्यात्मिक अनुभूति' का हिन्दी में सबसे सुन्दर उदाहरण कहा गया है। वाजपेयीजी ने छायावाद के सन्दर्भ में जिस 'आध्यात्मिक छाया का भान' शब्द का प्रयोग किया है, उसे मानवीय आधार देने का प्रयत्न किया। वे लिखते हैं कि 'नई छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, परन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है' (आधुनिक साहित्य : 'छायावाद' निबंध , पृ० ३१६)। वाजपेयी जी अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य—छायावाद को मध्यकालीन संत-भक्ति काव्य से अलगाते हैं। इन्हें वे किसी धार्मिक अथवा साधनात्मक प्रणाली से जुड़ा हुआ मानते हैं, पर नया काव्य मानव जीवन को स्वीकृति देता है और 'उसकी गति प्रकृति से पुरुष की ओर—दृश्य से भाव की ओर होती है। इसे वे दूसरे शब्दों में यों कहते हैं : 'छायावाद सांसारिक वस्तु के भीतर एक दिव्य सौन्दर्य का प्रत्यय है। उसमें अद्वैत तत्त्व का भास मिल जाता है। काव्य की दृष्टि से छायावाद प्रकृति, मानव-जीवन, प्रेम और सौन्दर्य को अधिक गहन रूप में प्रकट करता है' (राष्ट्रीय साहित्य : पृ० १०५-१०६)। इस प्रकार वाजपेयीजी ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को परिभाषित करते हुए उसका व्यक्तित्व स्पष्ट करने का प्रयत्न किया और उस पर अस्पष्टता, रहस्याभास आदि के जो आक्षेप किए गए, उनका तार्किक उत्तर दिया।

'आधुनिक साहित्य' के 'छायावाद' निबंध में मध्यकालीन संत-भक्ति काव्य और हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य—छायावाद का अन्तर स्पष्ट करते हुए नये काव्य को प्रकृति और मानव जीवन से सम्बद्ध करके प्रस्तुत किया गया है ताकि यह प्रमाणित हो सके कि वह अपने समय की उपज है। इस सन्दर्भ में 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' की भूमिका का यह वाक्य महत्त्वपूर्ण है जहां उन्होंने लिखा है कि 'काव्य स्वतः आध्यात्मिक है, काव्य से ऊंची अध्यात्म नाम की कोई वस्तु नहीं'। और वाजपेयीजी यही स्वतंत्र अध्यात्म सत्ता छायावादी काव्य में देखते हैं, जीवन के सन्दर्भ में। वाजपेयीजी हिंदी स्वच्छन्दतावादी काव्य और यूरोप के रोमांटिक आन्दोलन में भावगत समीपता देखते हैं, पर उन्हें इस बात का एहसास है कि छायावाद अपनी परिस्थितियों की उपज है और वह "राष्ट्रीय जीवन की प्रभाती ध्वनि' है। 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध' के 'स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, रहस्यवाद' शीर्षक अपने प्रसिद्ध निबंध में वाजपेयीजी अंग्रेजी रोमांटिसिज्म (स्वच्छन्दतावाद), 'मिस्टिसिज्म (रहस्यवाद) का विवेचन करते हुए एक साम्य दर्शाते हैं : 'यदि संक्षेप में कहा जाय तो प्रसाद और वर्ड्सवर्थ मानवतावादी हैं, कवि निराला और शेली क्रांतिप्रिय हैं, पंत और कीट्स सौन्दर्य-वादी हैं तथा महादेवी और विलियम ब्लेक रहस्यवादी हैं' (राष्ट्रीय साहित्य, पृ० १०८)। अपने इस तुलनात्मक विवेचन को किंचित विस्तार देते हुए वे कवियों

की पार्थक्य-रेखाएं भी स्पष्ट करते हैं जिससे समीक्षक की सूक्ष्म विवेचन क्षमता का पता चलता है, जैसे उनकी टिप्पणी : 'शेली और निराला में थोड़ा अन्तर भी है। निराला का झुकाव महाकाव्यत्व की ओर है। भव्यता और औदात्य के प्रति उनकी सहज उन्मुखता है। उनमें पौरुष गुण की प्रधानता है। शेली की रचना में यद्यपि विद्रोह की वाणी है तथापि वह उदात्त भूमिका पर न जाकर दु:खान्त के निकट पहुंच गई है। निराला का काव्य उदार कोटि का है। अत: वह महाकाव्य की धारा के समीप है' (राष्ट्रीय साहित्य : पृ० १११) इस प्रकार वाजपेयीजी एक ओर छायावाद की आध्यात्मिकता को प्रकृति और मनुष्य से जोड़ते हुए उसे मध्यकालीन संत-भक्ति काव्य से अलगाते हैं, दूसरी ओर इस नयी काव्यधारा को किसी अन्य आन्दोलन का पिछलगुआ मानने से इंकार करते हैं।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद की व्याख्या के क्रम में प्रश्न है कि उसका स्वरूप क्या है और उसके प्रमुख उपकरण क्या हैं? छायावाद को परिभाषित करते हुए आचार्य वाजपेयी ने 'सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया' का भान कहकर उसे एक स्वरूप देना चाहा है और इन शब्दों को अव्याख्याति नहीं रह जाने दिया, उन्हें विवेचित किया है। सूक्ष्म से उनका आशय जीवन की गहराई से है ताकि कविता ऊपर-ऊपर तैरकर 'निर्जीव खाका' बनकर न रह जाय। 'व्यक्त सौन्दर्य के अन्तर्गत वे वस्तु का मूर्तीकरण, प्रत्यक्षीकरण चाहते हैं ताकि अस्पष्टता, अमूर्तीकरण का भ्रम न रहे। आध्यात्मिकता को उन्होंने प्रकृति तथा मानव-समन्वित स्वीकार किया ही है और वे स्पष्ट कहते हैं कि 'छायावादी कवि दृश्यमान मानव जीवन को दृश्य करके उसकी झांकी देखता है'। इसे प्राचीन सूफ़ी काव्य की अपेक्षा वे 'अधिक सबल तथा यथार्थोन्मुख' कहते हैं और और मानते हैं कि 'छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिक जीवन की परिस्थितियों से ही मुख्यत: अनुप्राणित है।'

आचार्य वाजपेयी हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद के विषय में व्याप्त भ्रांतियों का निराकरण तर्क की भाषा में करते हैं और उसे भारतीय सन्दर्भ में रखकर देखते हैं। उनका स्पष्ट मत है : 'छायावादी काव्य इस देश की दार्शनिक बुनियाद को स्वीकार करके चला है। उसमें उसी के अनुरूप शब्दों का संचय है। इस हद तक हम इसे देश की प्रकृति के अनुकूल रखें। उसमें हमारी अपनी जलवायु का असर है।' इस नये काव्य छायावाद को आचार्यजी 'विद्रोह की वाणी' कहते हुए लिखते हैं : 'यह कवि की स्वतंत्र अनुभूतियों, लालसाओं और संघर्षों को प्रतिबिम्बित करती है। इसमें नियमानुशासन के विरुद्ध विद्रोह की वाणी व्यक्त हुई है' (राष्ट्रीय साहित्य, पृ० १०३)। यह विद्रोह केवल शिल्प अथवा अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, वह वास्तव में नये मनुष्य के चिन्तन का मूलाधार है। इसे हम स्वच्छन्दतावाद के मुख्य प्रस्थानबिंदु के रूप में स्वीकार करें तो बेहतर होगा और

समीक्षकों ने इसे इसलिए यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति के परिपार्श्व में रखकर देखा है। वाजपेयीजी ने अपने इसी निबंध में 'विद्रोह' को परिभाषित करते हुए उसकी 'वैयक्तिक स्वतंत्र भावना' का विशेष उल्लेख किया है। नयी स्थितियों में मनुष्य अपने लिए जो आज़ादी चाहता है, उसका प्रकाशन इस काव्य में हुआ है, इसमें संदेह नही। इसीलिए कवि के जीवन की निजी अनुभूतियां, सुख-दुःख, राग-विराग यहां काव्य-सम्पदा बनकर आए हैं। पर कवि की यह आज़ादी अराजक हो जाती, यदि वह जीवन मूल्यों से न जुड़ती और इसीलिए जहां वह अतिरिक्त अन्तर्मुखी हुई है, उसकी दुर्बलताएं भी स्पष्ट हैं।

हिन्दी स्वच्छंदतावादी काव्य-छायावाद के सिलसिले में आचार्यजी ने 'नये जीवन-मूल्यों की तिष्ठा और स्वतंत्र प्रयोग की प्रवृत्ति' का उल्लेख किया है। यह वैयक्तिक आज़ादी और विद्रोह का वह रूप है जो विचार, भावना से लेकर शिल्प तक फैला है। शिल्प में निराला का मुक्त छंद इसका प्रमाण, जिसके विषय में उन्होंने 'परिमल' में घोषणा की : 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना' (परिमल : भूमिका, पृ० १२) वाजपेयीजी छायावादी काव्य को जिन नये जीवन-मूल्यों का वाहक मानते हैं उनका सबल मानवीय पक्ष है और निश्चय ही उसके केन्द्र में 'मनुष्य' है। इसे लेकर वे कवि मैथिलीशरण गुप्त की 'आश्रमवासिनी सिधाई' को अपने समय के सन्दर्भ में अप्रासंगिक मानते हैं। इसके विपरीत वे बड़े जीवन-चक्रों को हाथ में लेना, पेचीदा भावधाराओं और सांस्कृतिक परिवर्तन के फलस्वरूप उठी हुई जटिल समस्याओं का निरूपण करना व्यक्ति, देश और जाति के जीवन के वृहत् छाया आलोकों को उद्-घाटित कर सकना, सारांश यह कि जीवन के गहरे और बहुमुखी घात-प्रतिघातों और विस्तृत जीवन-दशाओं में पद-पद पर आने वाले उद्वेलनों को चित्रित करने की बात करते हैं (जयशंकर प्रसाद, पृ० ९-१०)। वाजपेयीजी स्वयं स्वीकारते हैं कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य अपने समय की संश्लिष्टता और जटिलताओं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर पाता, पर उसने एक नया रचना-संसार बनाने का प्रयत्न किया, इसमें संदेह नहीं। वाजपेयीजी ने हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की पीठिका स्पष्ट की, उसका स्वरूप सामने लाए, पर समाजशास्त्र की अपेक्षा उसका सौन्दर्य-शास्त्र निर्मित करने में उन्होंने अधिक रुचि ली। वे छायावाद में अनुभूति और कल्पना जैसे प्रश्नों पर विचार करते हैं।

आचार्य वाजपेयी हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद का सौन्दर्यशास्त्र बनाने में सर्वोपरि हैं और इसे उनके मौलिक प्रदेय के रूप में स्वीकृति देनी होगी। वास्तव में वे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का एक शास्त्र बनाना चाहते हैं और इसके लिए विचार-भूमि, भाव-व्यापार के साथ कला और शिल्प पक्ष पर भी विचार करते है।

'नया साहित्य : नये प्रश्न' में अनुभूति के साथ कल्पना को छायावाद का एक प्रमुख उपादान मानते हुए वे कहते हैं : 'कलादर्शन में कल्पना शब्द उस संपूर्ण प्रक्रिया का द्योतक है जो काव्य-सृष्टि में आदि से अंत तक व्याप्त रहती है। कल्पना का मूल स्रोत अनुभूति है और उसकी परिणति है काव्य की रूपात्मक अभिव्यंजना। इस प्रक्रिया में गतिमान तत्त्व अनुभूति है और इस प्रकार कल्पना अनुभूति से अभि-व्यंजना तक विस्तृत है' (नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १४६)। 'कल्पना को अनुभूति का क्रियमाण रूप' मानकर उसे सर्जनात्मक दिशा दी गई है। इसी निबंध में वाजपेयीजी इस युग को 'सामाजिक और साहित्यिक परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह का युग' कहते हुए स्वीकार करते हैं कि 'छायावाद युग की अनुभूति व्यक्ति-परक और आदर्शात्मक रही है और उक्त अनुभूति ने अपना सामाजिक परिच्छेद प्रगीत काव्य का ही ग्रहण किया है' (वही, पृ० १४८)। प्रगीत में वैयक्तिक अनुभूतियों और निजी संवेदन की जो सुविधा होती है, उसका उल्लेख भी किया गया है। 'आधुनिक साहित्य' की भूमिका में 'नवीन प्रगीत-रूप' तथा 'प्रगीत रचनाएं' शीर्षक से इसकी विस्तृत चर्चा करते हुए कहा गया है : 'प्रगीत रचना में कविता इन समस्त उपचारों से विरत होकर केवल कविता या भावप्रतिमा बनकर आती है। संगीत के स्वरों की भांति प्रगीत के शब्द ही अपनी भावना-इकाइयों से कविता का निर्माण करते हैं, उनमें शब्द और अर्थ, लय और छंद अथवा रूप और निरूप की अभिन्नता हो जाती है, (आधुनिक साहित्य : भूमिका, पृ० २४)। प्रगीत हिन्दी स्वच्छंदतावादी काव्य का प्रतिनिधि माध्यम है, यद्यपि प्रसाद की 'कामायनी' तथा निराला के वृहत्तर प्रयोगों में इसका अतिक्रमण भी हुआ है, पर वहां भी गीतिकात्मकता (लिरिसिज़्म) मौजूद है, इसे स्वीकारना होगा। आचार्य वाजपेयी का कथन है : 'सौंदर्य ही चेतना है, चेतना ही जीवन है, अतएव काव्य-कला का उद्देश्य सौंदर्य का ही उन्मेष करता है' और छायावादी काव्य में वे इसका प्रक्षेपण देखते हैं।

आचार्य वाजपेयी ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद को उसकी समग्रता में देखने-पाने का प्रयत्न किया और इसके लिए सैद्धांतिक विवेचन के साथ-साथ उसकी रचनाशीलता का विस्तृत विश्लेषण किया। इस प्रकार सैद्धांतिक-व्यावहारिक दोनों दिशाओं में कार्य करते हुए वे छायावाद युग के प्रतिनिधि समीक्षक बने। उनकी समीक्षा में एक सम्मिलित स्थिति है और कवियों का विवेचन करते हुए वे सिद्धांत निर्मित करते चलते हैं तथा सैद्धांतिक चर्चा के बीच श्रेष्ठ रचनाशीलता से प्रमाण देते हैं। आधुनिक साहित्य के प्रमुख पक्षों पर विचार करते हुए उन्होंने जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त को छायावाद की वृहत्त्रयी कहा और इनके विषय में उनकी स्वतंत्र पुस्तकें उप-लब्ध हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने महादेवी को भी स्वच्छन्दतावाद से जोड़ते हुए

उनके काव्य का विवेचन किया है।

हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी और आधुनिक साहित्य में हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्य का विवेचन-विश्लेषण है। पर प्रमुख रूप से हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी में आचार्य वाजपेयी ने प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी का जो प्रामाणिक विश्लेषण किया है उससे काव्य में उनकी गहरी पैंठ का परिचय मिलता है। वे गहराई में जाते हैं और उन्हें कवियों के व्यक्तित्व का अन्तर भी मालूम है जैसे उनकी टिप्पणी कि 'कविताओं के भीतर से जितना प्रसन्न अथवा अस्खलित व्यक्तित्व निरालाजी का है, उतना न प्रसादजी का है, न पंतजी का। यह निरालाजी की समुन्नत काव्य-साधना का प्रमाण है',(हि० सा० बीसवीं शताब्दी : श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी निराला)। छायावादी कवियों को आचार्यजी ने दार्शनिक-वैचारिक पीठिका के साथ देखा और प्रकारान्तर से इस आक्षेप का उत्तर दिया कि यहां केवल साधारण भावुकता का व्यापार है। सुमित्रानन्दन पंत की जिस लम्बी कविता-'परिवर्तन' को बहुत सराहना मिली, उसके विषय में आचार्यजी कहते हैं कि "निराशामूलक होती हुई भी इस रचना में एक औदात्य और दर्शन की तटस्थता है।'

'बीसवीं शताब्दी' पुस्तक में काव्य-समीक्षा का प्राधान्य है, पर इसमें वाजपेयी ने अपने यशस्वी आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के विषय में तीन निबंध लिखे हैं। पर आरम्भ में गुरु और शिष्य में विचारों की टकराहट थी, और वाजपेयीजी छायावाद के प्रबल समर्थक के रूप में उभर रहे थे। वाजपेयीजी ने निबंध की प्रथम पंक्ति में ही स्वीकार किया है कि 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना के लिए युग-प्रवर्तक कार्य कर गए हैं' (हि० सा० बीसवीं शताब्दी : श्री रामचन्द्र शुक्ल १)। आचार्य शुक्ल के ऐतिहासिक रोल को वाजपेयीजी स्वीकारते हैं : हिन्दी साहित्य का पहला समीक्षात्मक इतिहास, तुलसी-सूर-जायसी की विस्तृत समीक्षाएं' सैद्धांतिक-व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में उनका कार्य। मतभेद है तो वैचारिक दृष्टि को लेकर। आचार्य वाजपेयीजी हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद को को अपना समर्थन देते हैं पर आचार्य शुक्ल उसे अपनी सम्पूर्ण सहानुभूति न दे सके। यह दो पीढ़ियों का अन्तर भी हो सकता है, दृष्टि-भेद तो ही है। पर आचार्यजी ने एक संतुलित दृष्टि से काम लिया है। आचार्य वाजपेयी का प्रमुख आक्षेप यह है कि 'शुक्लजी ने असंग होकर काव्य को नहीं देखा, व्यक्तिगत आदर्शों और विचारों की छाया से उसे ढंक रखा है' (हि० सा० बीसवीं शताब्दी : रामचन्द्र शुक्ल ३)। पर इसे वे उस समय की सीमाएं मानते हुए शुक्लजी के प्रदेय को स्वीकृति देते हैं।

'हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी' में आचार्य वाजपेयी हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करते हैं और इसके लिए उनके अपने तर्क हैं जैसे इस काव्य आन्दोलन को मानवीय भूमिका में रखकर देखना। वे

प्रसादजी को विकासशील और उदार सामाजिक प्रवृत्तियों के निरूपक मानते हुए उन्हें स्वातंत्र्यप्रेमी युग का प्रतिनिधि कहते हैं (हि० सा० बीसवीं शताब्दी : श्री जयशंकर प्रसाद निबंध)। निराला आचार्यजी के प्रिय कवि हैं और 'गीतिका" का विवेचन करते हुए वे उनमें पूर्ण मानवोचित सहृदयता और तन्मयता के साथ उच्चकोटि का दार्शनिक अनुबन्ध देखते हैं (हि० सा० बीसवीं शताब्दी : गीतिका)। कल्पना को वाजपेयीजी सुमित्रानन्दन पंत की कविता का मेरुदण्ड मानते हैं (हि० सा० बीसवीं शताब्दी : श्री सुमित्रानन्दन पंत) और इसी का विकास उनकी कविताओं में देखते हैं। महादेवी पर लिखते हुए आचार्य वाजपेयी आरम्भ में ही छायावाद की एक परिभाषा बनाने का यत्न करते हैं : 'मानव, अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।'

इस प्रकार हिन्दी साहित्य : 'बीसवीं शताब्दी' युवा-समीक्षक आचार्य वाजपेयी की ऊर्जा से निर्मित समीक्षा ग्रंथ है और यहां उनका प्रयत्न छायावाद की स्थापना का है, यद्यपि कतिपय अन्य सामयिक प्रसग भी यहां आए हैं जिनमें प्रमुख है प्रेमचन्द- सम्बन्धी उनकी चर्चा जिसे चार निबंधों में लिया गया है। वाजपेयीजी प्रेमचन्द के महत्त्व को स्वीकृति देते हैं जैसे 'सामयिक परिस्थिति में प्रेमचन्दजी को प्रसिद्धि मिली है उससे अधिक के वे अधिकारी थे' (हि० सा० बीसवीं शताब्दी : प्रेमचन्द निबंध)। पर कुल मिलाकर वाजपेयीजी की दृष्टि 'क्रिटिकल' अथवा अस्वीकृति की अधिक है, विशेषतया कलापक्ष को लेकर।

जयशंकर प्रसाद आचार्य वाजपेयी की आरम्भिक पुस्तक है (१९३९-४०) और इन निबंधों की रचना उस समय हुई जब छायावादी काव्य पर कई ओर से प्रहार हो रहे थे। जयशंकर प्रसाद के माध्यम से आचार्यजी हिन्दी स्वच्छन्दतावाद काव्य-छायावाद को उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक पीठिका के साथ देखते हैं और इसके बारे में प्रचारित कई भ्रांतियों का निराकण करने का प्रयत्न करते हैं। उनका कथन है कि : 'प्रसादजी का साहित्य सच्चे अर्थों में नवीन जीवन के सम्बद्ध है और वह आधुनिक समस्याओं का हल भी उपस्थित करता है। वह साम्प्रदायिक जीवन का उन्नायक है' ('जयशंकर प्रसाद : भूमिका, पृ० ३)। यहां प्रसादजी की 'मानवीय भूमि' स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, और आचार्यजी ने तो यहां तक कहा है कि 'प्रसादजी का रहस्यवाद अथवा उनकी आध्यात्मिक अनुभूति मानव-जीवन-व्यापार की नींव पर ही खड़ी है' (वही, पृ० ५)। इस संदर्भ में वे 'आंसू' काव्य के 'मानवीय व्यापार' का विशेष उल्लेख करते हैं, उसे लोक-अनुभूति से जोड़ते हैं। जिस छायावाद को कभी पलायनवादी घोषित किया गया था, उसके प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद के बारे में वाजपेयीजी कहते हैं : 'प्रसादजी मुख्यतः साम्य, सख्य और स्वातंत्र्य (इक्वैलिटी, फ्रैटर्निटी, लिबर्टी) के कल्पनाशील आदर्शवाद से

अनुप्रेरित थे। फिर भी उन्होंने एक भविष्यद्रष्टा की भांति आगामी वर्ग-संघर्ष का आभास दिया है। उन्होंने एक कल्पना प्रवण, सहानुभूतिशील और अग्रगामी मध्य वर्ग के चित्रण से आरम्भ कर श्रमिक दंपति के चरित्र-निर्माण तक अपना कथानक-साहित्य पहुंचा दिया है' (पृ० ६)। आचार्य वाजपेयी ने प्रगतिशीलता को नये संदर्भ में रखकर देखा और लिखा : 'राजनीतिक प्रगतिशीलता का काम नुस्खों से चल सकता है, पर साहित्यिक प्रगतिशीलता जीवन की गहराई में बिना प्रवेश किए नहीं आती' (पृ० ७)। इस दृष्टि से 'प्रसादजी तो विकासशील और उदार सामाजिक प्रवृत्तियों के निरूपक हैं। उनकी साहित्य-सृष्टि एक आशावादी और स्वतंत्र-प्रभा युग की प्रतिनिधि है। साहित्यिक अर्थ में उनका साहित्य सर्वथा प्रगतिशील है' (पृ० ८)।

जयशंकर प्रसाद की विचारभूमि स्पष्ट करने के मूल में आचार्य वाजपेयी का मुख्य प्रयोजन यह है कि छायावाद के विषय में प्रचारित इस छद्म को तोड़ा जाय कि वहां केवल भावुकता है, और वह वायवीयता का काव्य है, उसमें हाड़-मांस नहीं है। प्रसादजी की निबंध पुस्तक 'काव्य और कला तक अन्य निबंध' का लम्बा प्राक्कथन आचार्य वाजपेयी ने १९३९ में लिखा था। 'जयशंकर प्रसाद' नामक अपनी पुस्तक में वाजपेयीजी ने इसे 'नवीन दार्शनिक आयोजन' शीर्षक दिया है और इसे 'प्राकृतिक अध्यात्म का शिलान्यास' कहा है। इसका आरम्भिक वाक्य है : 'प्रसादजी हिन्दी के युगप्रवर्तक कवि और साहित्यस्रष्टा तो थे ही, एक असाधारण समीक्षक और दार्शनिक भी थे।' इसी क्रम में आगे कहा गया है। 'वे इतिहास को मानव-निर्मित संस्थाओं, उनके सामूहिक उद्योगों, मनोवृत्तियों और रहन-सहन की पद्धतियों के साथ देखना चाहते हैं और मनुष्यों की इन सारी प्रगतियों का केन्द्र समसामयिक दर्शन को मानते हैं' (पृ० २८)। इस दृष्टि से 'जयशंकर प्रसाद' में कंकाल-सम्बन्धी वाजपेयीजी का विश्लेषण विशेष रूप से विचारणीय है।

'जयशंकर प्रसाद' यद्यपि आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की आरंभिक समीक्षा कृति है, पर यहां हमें एक युवा-समीक्षक की मौलिक प्रतिभा का परिचय मिलता है। वाजपेयीजी प्रसाद के आरंभिक काव्य में उन सूत्रों की तलाश करते हैं जो उन्हें **'कामायनी'** तक ले गईं। सभी स्वीकारते हैं कि प्रसाद की आरंभिक रचनाएं काफी शिथिल हैं पर वाजपेयीजी उन तत्त्वों की ओर संकेत करते हैं जिनका निरन्तर विकास होता गया और जिनके सहारे कवि कामायनी के प्रौढ़तर प्रयोग तक जा सका। वे प्रसाद को 'मनुष्यों और मानवीय भावनाओं के कवि' कहते हैं (पृ० ६९) और 'आंसू' को 'सब प्रकार से एक मानवीय विरह काव्य' घोषित करते हैं। इसी मानवीयता का चरमोत्कर्ष उन्हें 'कामायनी' में दिखाई देता है जिसे वे 'आधुनिक मानव-मात्र, नर-नारी-पात्र की एक प्रतिनिधि कथा या जीवनी का स्वरूप भी मानते हैं' (पृ० ९३)। प्रसादजी की कामायनी पर विस्तार से लिखते

हुए वाजपेयीजी सर्वप्रथम इस मत का विरोध करते हैं कि प्रसाद एक भावुक कवि हैं। वे कहते हैं : 'मेरा यह दृढ़ विचार है कि प्रसादजी आधुनिक हिन्दी में वास्तववाद, वस्तुतंत्र के भी प्रवर्तक हैं' (पृ० ८७)। इसी अर्थ में वे उन्हें आधुनिक कहते हैं और उनके शब्दों में वे 'निष्ठावान यथार्थवादी कवि' हैं और इसी आधुनिक भावधारा का प्रतीक कामायनी काव्य है। उसमें इसी मनुष्यता का आवाहन किया गया है' (पृ० ८१)।

आचार्य वाजपेयी का कामायनी-विवेचन हिन्दी स्वच्छन्दतावादी युग की महत्त्वपूर्ण कृति को सही संदर्भ में रखकर देखने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वे इस काव्य को 'मनुष्य के क्रियात्मक बौद्धिक और भावात्मक विकास में सामंजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास' कहते हैं और 'मानव-धर्म-निरूपण का काव्य-प्रयास' भी (पृ० ९५)। ज़ाहिर है कि ऐसा लिखते हुए वाजपेयीजी के विचार में यह स्पष्ट है कि पौराणिक कथा- प्रसंग के भीतर से प्रसाद आधुनिक युग के संघर्ष का संकेत करना चाहते हैं—अतिरिक्त भोगवाद और अधूरी बुद्धि-दृष्टि इसी के दो पक्ष हैं। मनुष्य भीतर-ही-भीतर जिस अन्तःसंघर्ष से गुजरता है, वह इस काव्य का मनोवैज्ञानिक पक्ष है जिसे वाजपेयीजी ने 'मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान' कहते हुए लिखा है कि 'मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और काव्यात्मक निरूपण हिन्दी में शायद शताब्दियों के बाद हुआ है' (वही, पृ० १०२)। कामायनी हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का समापन ग्रंथ है और वाजपेयी ने इसका प्रामाणिक तथा अंतरंग विश्लेषण करते हुए उसके सौन्दर्य का सही उद्घाटन किया है। इसे एक श्रेष्ठ कृति स्वीकारते हुए वे इसी क्रम में लिखते हैं कि 'मानव जीवन आज अनेकानेक जटिलताओं और वैषम्यों से ग्रस्त है। उन जटिलताओं का दिग्दर्शन कराना और उनके निवारण का उपाय बताना आज के क्रांतिदर्शी कवि का ही कार्य है। प्रसादजी ने अपने कामायनी काव्य में इस क्रांतिदर्शिता का परिचय दिया है' (वही पृ० १०२)। यद्यपि यह समाधान निश्चय ही आदर्शवादी है, जिसके विषय में गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपनी पुस्तक 'कामायनी : एक पुनर्विचार' में टिप्पणी की है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला कई दृष्टियों से आचार्यजी के समीपी कवि हैं। दोनों बैसवाड़ा क्षेत्र के ब्राह्मण परिवार में जन्मे और युवावस्था में ही वाजपेयीजी निराला से प्रभावित हुए जिसका संकेत उनके पत्र-व्यवहार से मिलता है। कुछ समय तक निराला आचार्यजी के साथ भी रहे और उन्होंने 'चाबुक' निबंध संकलन में 'श्री नन्ददुलारे वाजपेयी' निबंध में उनकी सराहना करते हुए लिखा है कि 'यह सब देखने पर उनकी विशाल ज्ञानराशि और हिन्दी के प्राचीन एवं नवीन दोनों विभागों में साधिकार प्रवेश का निर्णय हो जाता है' (निराला : चाबुक, पृ० ४१)। आचार्य वाजपेयी **कवि निराला** नामक अपनी पुस्तक के प्रारंभिक निबंध :

'जीवनी और व्यक्तित्व' में महाकवि से अपने निकट सम्पर्क का उल्लेख करते हुए लिखते है कि : 'निरालाजी सर्वप्रथम एक मानव हैं, युगीन परिसीमाओं से ऊपर उठे हुए मानव। इसके पश्चात् वे एक उत्कृष्ट और महान कवि हैं। उनकी मानवता ही उनके काव्य की प्राणशक्ति है। उनके जैसे व्यक्ति से साक्षात्कार होना और घनिष्ठ सम्पर्क में आना—उनके स्नेह, सौजन्य और आत्मीयता का अधिकारी होना, किसी के भी लिए सौभाग्य की वस्तु हो सकती है। मेरे लिए तो उनका साहचर्य केवल सौभाग्य ही नहीं, एक दैवी संयोग और उपलब्धि रही है' (कवि निराला, पृ० २३)।

आचार्य वाजपेयी में कवि निराला की आस्था का प्रमाण यह है कि 'गीतिका' (प्रकाशन, १९३६) की समीक्षा और सरलार्थ टिप्पणी वाजपेयीजी ने लिखी, भूमिका स्वयं निराला ने और आशीर्वचन कवि जयशंकर प्रसाद ने। वाजपेयीजी निराला को उनकी समग्रता में देखने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि उनका विचार है कि निराला का विराट व्यक्तित्व एक ओर इस स्वच्छन्दतावादी काव्य को सर्वोत्तम अभिव्यक्ति देता है, वहीं दूसरी ओर वह इन सीमाओं का अतिक्रमण भी करता है। इसे वे कवि की विराटता मानते हुए उन्हें 'वैविध्य का कवि' कहते है, पर यह विविधता केवल अनेकवर्णी कृतियों के लिए नहीं है, वरन् इससे महाकवि की विलक्षण रचनात्मक ऊर्जा और सामर्थ्य का आभास मिलता है। वे कहते हैं : 'समग्र रूप से जीवनानुभवों के द्रष्टा के रूप में निराला का काव्य अपनी स्वच्छन्दतावादी विशालता में इन सबका अतिक्रमण कर गया है पर इसी क्रम में वे स्वीकारते हैं कि यह सब स्वच्छन्दतावाद के ही भीतर होता है : 'निराला के काव्य में शैलियां और रचना पद्धतियां बदलती रही हैं, परन्तु एक स्वच्छन्दतावादी कवि की चेतना का परिहार अन्त तक नहीं हुआ' (कवि निराला, पृ० २०७)। इसकी तुलना में कवि सुमित्रानन्दन पंत की बदलती काव्यभूमि में जो रचनागत स्खलन आया है, उससे समीक्षक वाजपेयी क्षुब्ध हुए हैं।

अनेक दृष्टियों से निराला के काव्यजगत पर विचार करते हुए आचार्य वाजपेयी आरंभिक काव्य-विकास, गीतिका, काव्य-विकास, आख्यान काव्य आदि से गुजरते हुए कवि के अंतिम काव्यचरण तक आते हैं। वे उनके काव्य को पांच प्रमुख चरणों में रखकर देखते हैं और हर एक का अन्तरंग विश्लेषण करते हैं। वास्तव में आगे चलकर निराला को अनेक सहृदय पाठक मिले और डॉ० रामविलास शर्मा जैसे जीवनीकार भी पर स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद के आरंभिक दौर में महाकवि निराला के समर्थ व्याख्याता रूप में आचार्य वाजपेयी का रोल ऐतिहासिक है, और आज भी कई मायनों में विशिष्ट। निराला अंतिम क्षणों तक सर्जनरत रहे और यद्यपि उनकी गद्य कृतियां सामाजिक यथार्थ को प्रक्षेपित करती हैं, पर लगता है कि उनका प्रमुख माध्यम कविता है। मरणोपरान्त

प्रकाशित 'सान्ध्य-काकली' कविता-संकलन से ज्ञात होता है कि वे अपना सर्वोत्तम और सम्पूर्ण प्रकाशन कविता के माध्यम से ही कर सकते हैं। जीवन की सांध्यबेला में एक 'आत्मचित्र' बनाते हुए निराला कहते हैं : सिद्ध योगियों जैसे या साधारण मानव/ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर (सांध्य काकली, पृ० ६७)। वाजपेयीजी निराला की इस विराटता और विविधता को सही ढंग से अपनी समीक्षाओं में पकड़ सके हैं, यह निर्विवाद है।

कवि निराला की मुख्य भूमि क्या है? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न वाजपेयीजी ने उठाया है और स्वयं इसका उत्तर भी दिया है। पुस्तक में 'दार्शनिकता' शीर्षक लंबा निबंध है जिसमें सबसे पहले वे एक सैद्धान्तिक प्रश्न करते हैं कि कविता और दर्शन का सम्बन्ध क्या होना चाहिए। उनका कहना है कि हमें देखना होगा कि कवि जीवन और जगत सम्ब धी किन प्रश्नों को उठा रहा है और उनका कौन-सा समाधान प्रस्तुत कर रहा है? यहां वे कविता और दर्शन के सम्बन्धों पर विचार करते हुए कवि के युग-दर्शन अथवा सामाजिक दृष्टि को प्रमुखता देते हैं और कहते हैं कि देखना होगा कि समय के बदलते दबावों में कवि का कोई समरस तत्त्वदर्शन है अथवा नहीं (कवि निराला, पृ०१४१-४२)। अक्सर निराला पर वेदान्ती प्रभाव तथा सामाजिक यथार्थ की स्वीकृति की बात की जाती है। पर वाजपेयीजी निराला के दर्शन में अध्यात्म की प्रमुखता देखते हैं और उसे मानववादी दृष्टि से जोड़ते हैं। वे लिखते हैं : 'निराला केवल अध्यात्मवादी दर्शन के पुरस्कर्त्ता नहीं हैं, वरन् वे अशेष मानवतावादी भूमिकाओं पर गए हैं' (वही, पृ० १४८)।

रचनाओं का विश्लेषण करते हुए वाजपेयीजी प्रमाणित करते हैं कि निराला की मुख्य वैचारिक-दार्शनिक भूमि मानवीय है और उनका अध्यात्म्य भी इसी के अन्तर्गत आ जाता है। जिसे निराला का अध्यात्म्य कहा जाता है, वह वास्तव में निराला की उदार मानवीय चेतना का ही प्रसार है, उच्चतर मानव मूल्यों को पाने का प्रयत्न। वाजपेयीजी लिखते हैं : 'समग्र रूप से देखने पर निराला-काव्य की मानवयादी भूमि भी स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने मानवीय भावनाओं और प्रवृत्तियों का सम्मान किया है और ऐसा करते हुए उन्होंने वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं को दूर ही रहने दिया है। इसी अर्थ में उनका काव्य तटस्थ और वस्तुमुखी है। इस मानवीय भाव-फलक पर उन्होंने दार्शनिकता का रंग भी चढ़ाया है, अध्यात्म की ओर भी गए हैं। परन्तु उनके अध्यात्म में लौकिक सौन्दर्य का तिरस्कार कहीं नहीं हुआ है। उनकी दार्शनिकता और उनका अध्यात्म औदात्य के उपकरण बने हैं, परन्तु उनकी कविता की मुख्य भूमि मानवीय धरातल के समीप रही है। मानवता के प्रति उन्होंने अपना विश्वास अडिग और स्थिर रखा है' (कवि निराला, पृ० २०८)। इस लंबे उद्धरण को देने की प्रासंगिकता इसलिए है कि वाजपेयीजी हिन्दी स्वच्छन्दता-वादी काव्य-छायावाद को नई मानवीय भावनाओं का काव्य कहते हैं और प्रसाद

तथा निराला में इसी का प्रतिफलन देखते हैं। यही नहीं वाजपेयीजी मानववाद के नाम पर चलने वाली पश्चिम की नकारात्मक दृष्टि की ओर भी संकेत करते हैं और कहते हैं कि निराला में व्यष्टि-समष्टि, व्यक्ति-समाज का वस्तु-विच्छेद उपस्थित नहीं हुआ क्योंकि उनमें भारतीय अद्वैत दर्शन के संस्कार हैं।

निराला के विविधता-भरे व्यक्तित्व की पहचान का काम अपेक्षाकृत सहज हो जाता है, एक बार यह जान लेने पर कि उनकी रचना, विशेषतया उनके काव्य की मुख्य भूमि मानववादी है। यह मानववादी अवधारणा अपरिभाषित नहीं है और निराला की कविता एक प्रकार से उसे प्रमाणित करती चलती है, उसे चरितार्थ करती है। इस बिंदु पर कवि की प्रेम भावना, सौन्दर्य दृष्टि, गीतात्मकता, अद्वैत दर्शन, प्रार्थनाभाव के साथ उनके सामाजिक यथार्थ, हास्य-व्यंग्य की संगति बिठा सकने में सुविधा होती है। आचार्यजी को फिर कवि के अन्तर्विरोध उघाड़ने की कोई विवशता महसूस नहीं होती, यह स्वीकारते हुए भी कि अन्तिम दिनों में कवि का मानसिक विक्षेप बढ़ गया था। समीक्षक के रूप में उन्होंने महाकवि की इस उदात्त मानवीय भूमि की सही पहचान की और उसे पाठकों तक पहुंचाया। वाजपेयीजी महाकवि की विराटता के विषय में लिखते हैं: 'निराला जैसे अनेक क्षितिजों और दिगन्त भूमिकाओं के कवि को वाद की सीमा में बांधना और भी कठिन है, यद्यपि निराला छायावाद के प्रवर्तकों में परिगणित होते हैं। निराला के साथ छायावाद शब्द का सम्बन्ध ऐतिहासिक भूमिका पर बना था, परंतु आरम्भ से ही उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियां उनको छायावाद की सीमित भूमि से बाहर खींच रही थीं' (वही, पृ० ४१)। इस प्रकार वाजपेयीजी निराला की मानवीय भूमियों को स्पष्ट करते हुए, वह मुख्य सूत्र तलाश लेते हैं जिससे इस महाकवि के व्यक्तित्व की अनेक दिशाओं और वैविध्य को समझा जा सके और उसमें व्यर्थ ही कोई असंगति अथवा विरोधाभास ढूंढ़ने की गलत कोशिश न की जाय। इस मानवीय दृष्टि का एक दूसरा पक्ष भी है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य अपनी व्याप्ति में उच्चतर मानव मूल्यों से परिचालित होता है, और जो वास्तव में समस्त श्रेष्ठ रचना का सांस्कृतिक प्रयोजन है। यदि रचना सही मानवमूल्यों को प्रक्षेपित नहीं करती, उदात्त नहीं है तो वह सर्जन नहीं, लेखन का व्यवसाय है। निराला अपनी संवेदनभरी मानवीय दृष्टि के सहारे कई बार अपनी ही सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं, वृहत्तर संसार से जुड़ते हैं और विश्व के सार्थक कवियों की पंक्ति में आ विराजते हैं। निराला, वाजपेयीजी के लिए कविता के एक अनिन्द्य प्रतिमान हैं, उन्हें वे 'विशिष्ट और महान् संघर्षशील कवि' कहते हैं, अपनी मानवीय दृष्टि में सम्पन्न।

निराला के व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए वाजपेयीजी कला-शिल्प पर भी विचार करते हैं: काव्यरूप, काव्यभाषा, कलापक्ष, प्रगीत आदि। यहां भी वे

निराला के वैविध्य को स्वीकृति देते हैं : गीतिका के गीत, मुक्तछंद की कविताएं, आख्यान रचनाएं, महाकाव्य की संभावनाएं लिए तुलसीदास तथा राम की शक्ति-पूजा, हास्य-व्यंग्य से भरा कुकुरमुत्ता और अंतिम क्षणों के प्रार्थनापरक गीत। शिल्प की इतनी दिशाएं और भाषा तथा अभिव्यक्ति की इतनी छवियां किसी एक ही कवि में मिलना कठिन होता है और यह सब प्रकार से महाकवि की विराटता का ही बोध कराता है। भाषा में संस्कृत समासबहुला भाषा, माधुर्य भरे प्रसाद गुण वाले गीत, बंगला के माधुर्य को अंकोरते हुए, अवधप्रदेश के बैसवाड़ा से लिए गए ठेठ देशज शब्द जो सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करते हैं, व्यंग्य की तेजतर्रार उर्दू मिश्रित शैली जिसमें अंग्रेजी के भी शब्द आ गए हैं और फिर भक्त कवियों जैसे प्रार्थनाभाव में डूबे निवेदन के शब्द। जब छायावाद से एकरसता की शिकायत की जाती है और कहा जाता है कि उसकी भाषा इकहरी है तब निराला का यह वैविध्य विशिष्ट हो उठता है। संगीत से भरे, राग-रागनियों में बंधे गीत निराला की संगीत-क्षमता का प्रमाण। निराला कहीं शृंगार, प्रेम, करुणा में डूबते हैं तो कहीं व्यंग्य की मुद्रा में आ जाते हैं। एक सजग समीक्षक के रूप में वाजपेयीजी ने इसे पहचाना और कहा कि : 'इतना बड़ा शैली-प्रयोक्ता कवि आधुनिक हिन्दी काव्य में तो है ही नहीं, नवयुग के संपूर्ण भारतीय साहित्य में भी मुश्किल से मिलेगा, (कवि निराला, पृ० १३७)।

आचार्यजी निराला के अंतरंग व्याख्याता और विशिष्ट समीक्षक हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनका काव्य मर्म और काव्य सौन्दर्य उद्घाटित करने में वे सक्षम हुए हैं। उनकी रचनाशीलता की 'मानववादी भूमिका' स्थापित करके उन्होंने छायावाद काव्य की विस्तार-भूमि देखी है, और इस प्रकार हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को एक नई अर्थवत्ता दी है। कवियों की तुलना का कार्य कठिन होता है और खतरनाक भी, पर वाजपेयीजी ने निराला, प्रसाद पर तुलनात्मक दृष्टि डालते हुए कहा है कि 'दोनों ही कवि अपनी प्रतिभा में महान, अप्रतिम और अपराजेय हैं' पर हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी में उनकी टिप्पणी है : 'कविताओं के भीतर से जितना प्रसन्न अस्खलित व्यक्तित्व निरालाजी का है, उतना न प्रसादजी का है न पंतजी का। यह निरालाजी की समुन्नता काव्यसाधना का प्रमाण है' (हि० सा० : बीसवीं शताब्दी, पृ० १४३)। इसे आचार्यजी ने निराला की असंगता भी कहा है जिसके लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रायः कालिदास अथवा रवीन्द्र का उल्लेख करते हैं। निराला की यह असंगता हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को नयी दिशाएं देकर उसे प्रगति-प्रयोग तक ले जाती है। आचार्य वाजपेयी निराला को 'शताब्दी का कवि' कहते हुए लिखते हैं : 'महान् कवि वह है जो आस्था नहीं खोता, पराजित नहीं होता और अपने को कठिन परिस्थितियों में रखकर भी मानववादी भूमि पर बना रहता है। निस्संदेह निराला ऐसे ही कवि हैं। वे भारतीय साहित्य

के मणि-दीप हैं, उज्ज्वल आलोक-नक्षत्र हैं' (कवि निराला, पृ० १९९)।

कवि सुमित्रानन्दन पंत आचार्य वाजपेयी की मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तक है। नयी प्रगीत सृष्टि की चर्चा करते हुए आचार्यजी ने पंत का विशेष उल्लेख किया है : 'सुमित्रानन्दन पंत जब अपनी 'वीणा' लेकर हिन्दी में आए, तब हिन्दी प्रगीत की परमोच्च संभावना उसमें केन्द्रित हो गई। कुछ वर्षों तक उन्होंने हमारी इस आशा को पल्लवित भी किया। उनके आरंभिक प्रगीतों में भावना की जो स्वच्छता, कोमलता और रमणीयता पाई गई और भाषा की जो अनुपम मिठास और परिष्कृति देखी गई, वह कदाचित विश्व के थोड़े कवियों की आरंभिक रचनाओं में देखी और पाई गई होगी' (कवि सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ४६)। पंत के आरंभिक काव्य में इस प्रकार की संभावनाएं देखकर, वाजपेयीजी जैसे सजग समीक्षक की चेतना में कवि पंत से अधिकाधिक अपेक्षाएं स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। वे स्वीकारते हैं कि 'पल्लव' की रचना इस वैयक्तिक अनुभूति के अवसाद से दूर होकर अतिशय सजीव कल्पना-सृष्टि का रूप ग्रहण करती दिखाई देती है' और इस संदर्भ में वे पंत की प्रसिद्ध कविता 'परिवर्तन' का विशेष उल्लेख करते हैं। इन रूपकों को वे उन सुंदर प्रस्तरखंडों के सदृश पाते हैं जिनकी सहायता से कवि पंत अपने आगामी विशाल निर्माण की भूमिका बांधते जान पड़ते हैं। वाजपेयीजी कहते हैं : 'इसी समय हम हिंदी प्रगीत की उच्चतम परिणति की कल्पना करने लगे थे' (वही, पृ० ४६)। पर समीक्षक के रूप में वे निराश होते हैं। कई बार यों होता है कि विशिष्ट प्रतिभाओं से हमारी कतिपय अपेक्षाएं बन जाती हैं, या फिर हम उनमें अपनी मनोवांछित कल्पनाओं को प्रतिफलित होते देखना चाहते हैं। और इनकी पूर्ति न होने पर निराश होते हैं। इसी स्थिति में वाजपेयीजी ने लिखा है कि 'ज्योत्सना' और 'गुंजन' तक हम किसी प्रकार धैर्य धारण कर सकते थे, पर इसके पश्चात नहीं। पर इसके पश्चात ही पंत ऐसे बिछले कि हमारी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। वे प्रगीत भावना क्षेत्र से बाहर निकलकर ऐसी सृष्टियां करने लगे जिन्हें साहित्य में 'प्रगीत' की संज्ञा तो नहीं दी जा सकती' (वही, पृ० ४७)। वाजपेयीजी हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद को मुख्यतया प्रगीतात्मक मानकर पंत जैसी प्रतिभाओं में उसका सर्वोत्तम प्रतिफल देखना चाहते हैं क्योंकि एक समीक्षक के रूप में वे सोचते हैं कि कवि में इस प्रकार की क्षमता हैं।

पंत के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य को लेकर कई प्रकार की प्रतिक्रियाएं उस समय हुई थीं। जब पंत युगान्त, युगवाणी तथा ग्राम्या की मध्यवर्ती सृजनभूमि में थे, उस समय प्रगतिवादी समीक्षकों ने उनका भरपूर स्वागत किया था क्योंकि उनमें सामाजिक यथार्थ के स्वर थे, पर जब वे 'स्वर्णकिरण' से आरंभ होने वाले अध्यात्म्य काव्य में आए तो उन पर तीखे प्रहार हुए। जहां तक वाजपेयीजी का प्रश्न है वे विचार के स्तर पर पंत का विरोध करते नहीं दिखाई देते, पर उनका

कहना है कि 'सन् ३२ या उसके आसपास से (जिसमें प्रगतिशील काव्य भी है) पंत कवि के बदले कलाकार अधिक हो गए और काव्यरचना के स्थान पर कुछ ऐसी कृतियां करने लगे जो ललित की अपेक्षा उपयोगी अधिक थी, अथवा जो, सीधे ही क्यों न कहें, काव्य की अपेक्षा काव्याभास अधिक थीं' (वही, पृ० ४७)। और इसी क्रम में वे पंत के काव्य कौशल को स्वीकृति देकर भी अपनी प्रसिद्ध टिप्पणी देते हैं कि 'जहां तक प्रगीत काव्य का संबंध है, हिंदी का शेली हिंदी में आता, आता ही रह गया।' इस प्रकार वाजपेयीजी परवर्ती पंत को हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य के संदर्भ में रखकर देखना चाहते हैं और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होते न देखकर किंचित निराश होते हैं। यह विचारणीय कि कवि निराला को विभिन्न काव्यचरणों से गुजारते हुए वाजपेयीजी उनमें स्वच्छन्दतावाद की ही पृथक् भूमियों का प्रसार पाते हैं और सारी रचनाशीलता को मानववादी अवधारणा के अंतर्गत रखकर देखते हैं, संतुष्ट होते हैं और महाकवि को विश्व की सर्वोत्तम कवि-प्रतिभाओं में परिगणित करते हैं। पर पंत में वे ऐसी सामंजस्य-रेखा नहीं खोज पाते। तो क्या समीक्षक के रूप में वाजपेयीजी प्रकारान्तर से यह संकेत करना चाहते हैं कि पंत में निराला जैसी ऊर्जा का अभाव है? या पंत का मूलाधार ही कहीं शिथिल है कि वे गांधी, मार्क्स अथवा अरविंद से बारी-बारी से अतिरिक्त अभिभूत हो जाते हैं, और अपनी किसी दुर्बलता के चलते उनके विचार अथवा दर्शन को अनुभूति के स्तर पर अंगीकार कर उसे काव्य से विलयित नहीं कर पाते?

आचार्य वाजपेयी कवि सुमित्रानन्दन पंत पर एक सम्पूर्ण पुस्तक लिख रहे थे जो उनके आकस्मिक अवसान के कारण अधूरी रह गई। यदि यह पूरी हो सकी होती तो संभव था वे पंत पर पुनर्विचार करते। एकषष्ठी के अवसर पर 'पुष्पोहार' के रूप में अपनी भावनाएं अर्पित करते हुए वाजपेयीजी स्वीकारते हैं कि 'पंत का कवि-व्यक्तित्व अब भी अतिशय सजग और सतेज है तथा वह श्रेष्ठ काव्य की सृष्टि के लिए पूरी तरह सचेत और सक्षम भी है' पर यहीं वे यह 'अभ्यर्थना' भी करते हैं कि 'वे (पंतजी) दर्शन और कविता के दृश्यमान द्वन्द्व को अपने व्यक्तित्व में उपशमित कर लें और दोनों की पृथक् सरणियों को मिलाकर एक हो जाने दें' (वही, पृ० ५६)। यहां समीक्षक के रूप में उनका आशय किसी भी दर्शन को काव्यानुभूति से तदाकार करने का है, क्योंकि कविता को वे मूलतः संवेदन तथा भावना का व्यापार मानते हैं। पंत के काव्य का मूल्यांकन करते हुए आचार्यजी उनके काव्य विकास की चर्चा करते हैं और 'ग्राम्या' तक पहुंचते हैं तथा बाद में उनकी संक्षिप्त टिप्पणी 'परवर्ती काव्य और अरविंद दर्शन' है। वास्तव में वाजपेयीजी को पूर्ववर्ती पंत निश्चित ही प्रिय हैं क्योंकि वहां उनका छायावादी कवि अपनी निसर्ग प्रतिभा में उपस्थित है और वे उसे उसी रूप में विकसित होते देखना चाहते हैं। इसीलिए वे पंत के परवर्ती काव्य को अधिक स्वीकृति नहीं देते क्योंकि वह स्वच्छन्दतावादी

काव्य की परिधि में आता नहीं प्रतीत होता।

प्रसाद, निराला, पंत को वृहत्त्रयी के रूप में स्वीकार कर आचार्य वाजपेयी महादेवी वर्मा को भी छायावाद की रहस्यवादी धारा से जोड़कर देखते हैं। 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' में महादेवी पर उनका एक लम्बा निबंध है जिसके आरंभ में उन्होंने छायावाद की अपनी प्रसिद्ध परिभाषा दी : 'व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान' और उसी क्रम में रहस्यवाद पर किंचित विस्तार से विचार किया। वे लिखते हैं कि 'रहस्यवाद के इस सोपान से ऊपर उठने पर हम प्राकृत या अपरोक्ष अनुभूति छोड़कर परोक्ष अनुभूति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। महादेवीजी के काव्य की यही भूमि है' (हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १६७)। यहां आचार्यजी पुराने रहस्यवाद से महादेवी की रहस्यभावना को अलगाते हैं। प्राचीन रहस्यवाद के विषय में उनका विचार है कि वह बड़े-बड़े दुर्दिन देख चुका है, अपने अतिप्राकृत स्वरूप के कारण उसकी अभिव्यक्ति अतिशय दुर्गम और दुरूह। यह स्वीकारते हुए भी कि महादेवीजी के काव्य में छायावाद युग की अधिक विशेषताएं नहीं मिलतीं, वाजपेयीजी की ही परिभाषा के अनुसार उन्हें स्वच्छन्दता-वाद के व्यापक दायरे में लेना होगा क्योंकि उसका एक पथ रहस्यभावना का भी है। उनकी यह स्वीकृति है कि 'वे प्रकृति के एक-एक रूप या उसकी एक-एक वृत्ति को साकार व्यक्तित्व देकर उनके व्यापारों की कल्पना करती हैं जिनमें उनकी समृद्ध कल्पना-शीलता प्रकट हुई है। अवश्य यह कल्पना-बाहुल्य ही छायावाद-युग की एक विशेशता उनके काव्य में दीखती है' (हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १७०)।

आचार्यजी महादेवी के काव्य का विवेचन यामा के आधार पर करते हैं जिसमें कवयित्री के चार काव्य-याम हैं : नीहार, रश्मि, नीरजा और सान्ध्यगीत। कविताओं की व्याख्या द्वारा वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कल्पना के अतिरिक्त महादेवी की प्रवृत्ति अन्तर्मुखता की है, अर्थात् वे अपने भीतर अधिक झांकती हैं। उनके सौंदर्यचित्रण को वे आध्यात्मिक रहस्य मुद्राओं से परिपूर्ण कहते हैं जिसमें एक विलक्षण उदासीनता, सात्विकता, शान्ति और निश्चलता झलकती है।' इसी प्रकार वाजपेयीजी महादेवी की वेदनानुभूति, लाक्षणिकता आदि का विशेष उल्लेख करते हैं और प्रसाद, निराला आदि की तुलना में उनकी काव्यभूमि का पार्थक्य बताते हैं। यह स्वीकारते हुए भी कि 'हिन्दी में महादेवीजी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्यकाल में हुआ था' वे इसी वाक्य में कहते हैं : 'किंतु आरम्भ से ही उनकी रचनाएं छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थीं', (वही, पृ० १६३)। इस बात को उन्होंने 'आधुनिक साहित्य' की भूमिका में दूसरे ढंग से कहा है : 'यद्यपि महादेवीजी छायावादी परम्परा को ही लेकर आगे बढ़ीं, पर वे क्रमशः प्रसाद, निराला और पंत की सामाजिक पृष्ठभूमि पर की गई लोक-रचनाओं से

दूर होती गईं' (आधुनिक साहित्य : भूमिका, पृ० ३३)। क्या इसे हिंदी स्वच्छन्दतावादी काव्य, विशेषतया छायावाद की निगति का अग्रिम संकेत कहा जाएगा ?

आचार्य वाजपेयी ने हिंदी स्वच्छन्दतावाद, छायावाद युग के साथ-साथ यात्रा की। उसे सैद्धान्तिक, व्यावहारिक दोनों समीक्षा पद्धतियों से समृद्ध किया और वे उसके सर्वोपरि समीक्षक के रूप में स्वीकारे जाते हैं।

५. निष्कर्ष और समापन

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के व्यक्तित्व की कई दिशाएं हैं : अध्यापक, समीक्षक, विचारक, पत्रकार, प्रशासक और इन सबके मूल में उनका विवेकवान, संवेदनशील, निश्छल मनुष्य है जो उन्हें सर्जनरत रखता है। वाजपेयीजी ने पत्रकार के रूप में अपनी जीवनयात्रा का आरंभ किया और 'भारत' में निर्भीक सम्पादक का रोल निभाया। उनका यह लेखन राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ यात्रा करता है। अपनी मान्यताओं और प्रतिबद्धताओं पर अडिग रहने के कारण उन्हें 'भारत' छोड़ना पड़ा। इससे उनके चरित्र की दृढ़ता और उनके असमझौतावादी रुख का आभास मिलता है। राजनीति वाजपेयीजी का कार्यक्षेत्र नहीं, इसीलिए वे साहित्य-सम्पादक की भूमिका बेहतर ढंग से निभाते हैं। शिक्षक के रूप में आचार्य वाजपेयी सर्वाधिक यशस्वी हैं और उन्होंने अपने व्यक्तित्व के संस्पर्श से कई पीढ़ियों का दिशा-निर्देश किया। उनका बड़प्पन यह कि उन्होंने अपने विद्यार्थियों को चिन्तन की स्वतंत्रता दी और अपने विचार उन पर आरोपित करने का प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि उनके शिष्य विभिन्न सरणियों में काम कर रहे हैं।

आचार्य वाजपेयी स्वच्छन्दतावादी समीक्षक अथवा 'रोमांटिक क्रिटिक' के रूप में सम्बोधित किए जाते हैं। इसका एक कारण हिन्दी स्वच्छन्दतावाद-छायावाद के साथ उनकी अन्तरंग यात्रा भी है। प्रसाद, निराला. पंत के विषय में उनकी स्वतंत्र समीक्षा-पुस्तकें हैं और आधुनिक साहित्य, हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी, आधुनिक काव्य-रचना और विचार में उनका छायावादी काव्य-संबंधी विवेचन है। वाजपेयीजी की समीक्षा में वे सूत्र तलाशे गए हैं जो प्राय: रोमांटिक आलोचना में मिलते हैं और इस आधार पर उन्हें स्वच्छन्दतावादी समीक्षक कहा जाता है। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि अपनी रोमांटिक चेतना के कारण वे सूर का पक्ष लेते हैं और नयी कविता के आरंभिक दौर में, उसकी नव-यथार्थवादी प्रवृत्तियों को अपना समर्थन देने में संकोच करते हैं। पर वाजपेयीजी को एक विकासमान व्यक्तित्व के रूप में देखना अधिक उचित होगा, और यह भी कि उनके लेखन की एक समन्वित भूमि है जिसमें एकाधिक धाराएं प्रवेश पाती हैं और वे उनके संयोजन का प्रयत्न अपनी कृतियों में करते हैं। ऊपरी तौर से देखने

पर हम अन्तर्विरोधों तक की शिकायत कर सकते हैं, पर सामाजिक इतिहास के साथ बढ़ते किसी विकासमान व्यक्तित्व में ऐसी स्थितियां स्वाभाविक कही जायंगी। आचार्यजी की आरंभिक टकराहट यशस्वी गुरु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से हुई, पर उन्होंने उनके ऐतिहासिक रोल को स्वीकारा और स्वयं को उनकी शिष्य-परम्परा से जोड़ने में सुख माना। 'हंस' के आत्मकथांक को लेकर प्रेमचन्द से उनका विचार-विभेद हुआ, पर उन्होंने उनका महत्त्व स्वीकारते हुए लिखा : 'हम हिन्दी उपन्यासों के उस युग में पहुंचते हैं जिसका शिलान्यास प्रेमचन्द ने किया और जिसमें आकर हिन्दी उपन्यास एक सुनिश्चित कलास्वरूप को प्राप्त कर अपनी आत्मा को पहचान सका तथा अपने उद्देश्य से परिचित होकर उसकी पूर्ति में लग सका' (प्रेमचंद, पृ० ५)। इसी प्रकार प्रयोगवाद पर अपने आरंभिक आक्रमण के बाद उन्होंने नयी कविता को अपनी सहानुभूति दी, उसका समर्थन किया।

आचार्य वाजपेयी के कृतित्व का यह एक सराहनीय पक्ष है कि सूर-तुलसी से लेकर छायावाद युग से होते हुए वे नये साहित्य तक आए और इससे उनकी लम्बी रचना-यात्रा का प्रमाण मिलता है। आज 'अध्यापकीय आलोचना' की बात की जाती है और आक्षेप किया जाता है कि हमारे विश्वविद्यालय नये साहित्य के विरोधी हैं। पर आचार्यजी जैसे अध्यापक-समीक्षक हैं जिन्होंने सम्पूर्ण रचनाशीलता के साक्षात्कार पर बल दिया। वास्तव में उनके चिन्तन की एक सम्मिलित भूमि है जिसे हम संश्लिष्ट भूमि कह सकते हैं। मनुष्य की स्वतंत्रता, सहज सौन्दर्य दृष्टि उनके स्वच्छन्दतावादी रूप का परिचय देते हैं, पर जहां तक रचना में कलात्मक सौष्ठव का प्रश्न है वे क्लासिकी पद्धति के निकट भी पहुंचते हैं और उन्हें हम रोमांटिक-क्लासिक पद्धतियों का संयोजन करते हुए पाते हैं। पर कलात्मक उत्कृष्टता की मांग करते हुए वे ऐसे कलावाद अथवा कला कला के लिए शुद्ध साहित्य वाले सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते जिसकी जीवन-सम्पृक्ति कमजोर हो। रचना के स्वतंत्र व्यक्तित्व की मांग करते हुए भी उन्हें यह एहसास है कि उसकी एक सांस्कृतिक-सामाजिक भूमिका होती है। नई कविता का विवेचन करते हुए वे कहते हैं : 'भावना की रोमांटिक शून्यता में पग रखते हुए कवियों को विशाल सामाजिक जीवन और उसके घात-प्रतिघातों से मुंह नहीं मोड़ लेना है। नई कविता के उन्नायक यदि हिन्दी काव्य की संघर्षशील राष्ट्रीय परम्परा को कुछ भी मूल्य या महत्त्व देते हों तो उन्हें अपने रचना क्षणों में अधिक संयम, शालीनता और दायित्व का परिचय देना होगा।' (नई कविता, पृ० १२७)।

आचार्य वाजपेयी वास्तव में रचना के लिए एक समन्वित भूमि की तलाश करते दिखाई देते हैं जिसकी ओर प्रायः हमारा ध्यान नहीं जाता क्योंकि हम उन्हें स्वच्छन्दतावाद-छायावाद से जोड़कर छुट्टी पा लेना चाहते हैं। वाजपेयीजी का परिवार राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा रहा है और उन्होंने काशी हिन्दू विश्व-

विद्यालय जैसे राष्ट्रीय भावनाओं वाले शिक्षा-संस्थान में अपना काफ़ी समय व्यतीत किया। जिस समय आचार्यजी ने अपना कार्य किया भारतीय नवजागरण भी पीठिका में मौजूद था। इन परिस्थितियों में हम वाजपेयीजी के चिन्तन का एक राष्ट्रीय पक्ष भी देख सकते हैं जिसकी ओर उन्होंने कई स्थलों पर संकेत किया है। यह इसलिए और भी उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य साहित्य से उनका गहरा परिचय है और समीक्षा सिद्धान्तों के गढ़ने में उन्होंने उसका उपयोग भी किया है। पर वे पश्चिम से आक्रान्त नहीं होते और किसी अकादमिक साम्राज्यवाद के सामने घुटने भी नहीं टेकते। इसके विपरीत वे राष्ट्रीय चिन्तन पर बल देते हैं। उनकी इस राष्ट्रवादी विचारणा को किसी संकुचित अर्थ में नहीं ग्रहण किया जाना चाहिए। यहां उनके चिन्तन का एक देशज-चरित्र भी है जो कई कारणों से पूरी तरह खुल नहीं पाता। अपनी राष्ट्रीय विचारणा के चलते उन्होंने पाश्चात्य समीक्षा के साथ भारतीय साहित्य चिन्तन पर बल दिया। वे उस प्राचीन सम्पदा का उपयोग आज के संदर्भ में करना चाहते हैं और उन्होंने साहित्यशास्त्र पर नयी दृष्टि से विचार किया है। 'रस सिद्धान्त : नये सन्दर्भ' पुस्तक इसका प्रमाण है। अपनी राष्ट्रीय विचारणा को व्यक्त करते हुए वे 'आधुनिक साहित्य' की भूमिका के लगभग अंत में लिखते हैं : 'अंत में हमें निवेदन करना है कि न तो वादों के क्षेत्र से, न साहित्यिक रचना या समीक्षा की भूमियों से ही हमें पश्चिमी कलम अपने देश में लगानी है। हम देख चुके है कि वादों के प्रभाव से कितनी अनर्गल और प्रभावहीन रचनाएं साहित्य में आती हैं—आ रही है। रचना और समीक्षा की भूमि भी स्वतंत्र ही रहनी चाहिए' (पृ० ५४)।

आचार्य वाजपेयी ने अपनी रचना-यात्रा का आरंभ उस समय किया जब भारतीय समाज आजादी के संघर्ष से गुजर रहा था और वे उस समय तक क्रियाशील रहे जब आजादी के बाद भारतीय समाज एक संक्रमणकालीन दौर में है। आचार्यजी का मुख्य कार्यक्षेत्र इतिहास और समाजशास्त्र नहीं हैं, पर उन्होंने सामाजिक स्थितियों के कई सकेत किए हैं विशेषतया रचना में मध्यवर्ग की भूमिका के। 'आधुनिक साहित्य' की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि 'वे सभी सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी थे। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में वे सुधार करना चाहते हैं—नैतिक और भौतिक दोनों। इस कार्य के लिए उनमें पूरा आत्मविश्वास और लगन थी' (पृ० ११)। आजादी की लड़ाई और सामाजिक सुधार में भाग लेता हुआ यह मध्यवर्ग आगे चलकर रूपान्तरित होता है और आजादी के बाद, प्रकारान्तर से वह भी लूट-खसोट का भागीदार बनना चाहता है। वह एक विचित्र अन्तर्विरोध में फंसता है—कई बार शाब्दिक स्तर पर विद्रोह की बातें करते हुए, मूलत: ऐकान्तिक, समाजविमुख अथवा प्रतिक्रियावादी। ऐसी ही स्थिति में वाजपेयीजी ने प्रयोगवाद को लेकर तीखी टिप्पणियां कीं और इसे 'साहित्यिक अनाचार

कहा (नई कविता, पृ० १०२)। इस दृष्टि से वाजपेयीजी में भाषा-शिल्प के आभिजात्य आग्रह, तथा कलात्मक सौष्ठव की अपेक्षा के बावजूद, उनकी रचना की एक सामाजिक मांग भी है। वे इस बात पर बल देते है कि रचना का मुख्य कार्य हमारे भावों का उन्नयन है और वह हमें निरन्तर ऊपर उठाने का उपक्रम करती है—जैविक इन्द्रिय संसार से उच्चतर मानव मूल्यों के जगत में ले जाती है। अपने प्रिय कवि निराला के प्रदेय पर विचार करते हुए वाजपेयीजी लिखते हैं: 'निराला के व्यक्तित्व में एक तत्त्व ऐसा है जो युग की समस्त जीवन-भूमिका पर एक समन्वय स्थापित कर सका है। वह पहले आशा के स्वर को लेकर चले है, पीछे आक्रोश के स्वर को और अंत में परम सत्ता के आह्वान के स्वर को। अपने व्यक्तित्व और वैयक्तिक साधना के बल पर उनके काव्य में एक सामंजस्य की भूमिका मानववादी स्तर पर है, मानव जीवन के प्रति आस्था पर निर्मित है, यह निराला का मूल्यवान प्रदेय है' (कवि निराला, पृ० १८१)।

आचार्य वाजपेयी के चिन्तन का केन्द्रीय आधार उनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावनाओं से परिचालित है, इसमें सन्देह नहीं, पर समीक्षा की स्वच्छन्दतावादी भूमि के कारण उसका रूप परिवर्तित हो गया है और उसकी पहचान का कार्य आसान नही रह जाता। उनकी राष्ट्रीय-सामाजिक चेतना में मनुष्यमात्र की उपस्थिति है और वे कुछ आक्रोश भरे वक्तव्यों अथवा उत्तेजक पंक्तियों भर को राष्ट्रीयता की परिधि में लेने से इंकार करते हैं। इस दृष्टि से वे वाल्मीकि अथवा कालिदास को राष्ट्रीय कवि कहते हैं क्योंकि उनमें हमारी संस्कृति अपने प्रतिनिधि रूप में अभिव्यक्ति पाती है। वे निराला के गीत: 'भारति जय विजय करे' अथवा प्रसाद के 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' को राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकृति देते है। रचना की राष्ट्रीय-सामाजिक चेतना और उसके देशज चरित्र पर वाजपेयीजी का आग्रह एक व्यापक संदर्भ में है जिसमें इस बात की स्वीकृति कि उसमें अपनी धरती का संस्पर्श होना चाहिए, पर उसे मनुष्य मात्र को सम्बोधित करने की क्षमता भी रखनी होगी। केवल उक्ति, कुछ वाक्य या सपाट वक्तव्य रचना की हैसियत नहीं प्राप्त कर सकते।

आचार्य वाजपेयी जिस दौर से गुजरते हैं, उसमें संक्रमणकालीन स्थिति के बावजूद रचना की पर्याप्त सक्रियता है और उनके लिए यह कम सराहनीय नहीं कि वे नये रचनाकारों से परिचय प्राप्त करते हैं। उन्होंने कई नये रचनाकारों की भूमिकाएं लिखीं, और कइयों को अपनी सहानुभूति भी दी। यह बात दीगर है कि जिनमें अपनी ऊर्जा नहीं थी, वे जल्दी ही चुक गए या फिर अपने को दुहराते-भर रह गए। जब वाजपेयीजी नयी कविता पर लिख रहे थे तो उन्होंने अज्ञेय, भारती, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता जैसे अपेक्षाकृत स्थापित कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों का विवेचन भी

किया है : कुंवरनारायण, जगदीश गुप्त, दुष्यंतकुमार, केदारनाथ सिंह आदि। यों भी सूर-तुलसी से चलकर नयी कविता तक आना इस बात का सबूत कि वे अपने समय की रचनाशीलता से केवल परिचित ही नहीं रहना चाहते, अपनी प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त करते हैं। कई बार उनकी टिप्पणियां तीखी लग सकती हैं जैसे प्रयोगवाद के विषय में, जिसे उन्होंने 'बैठे ठाले का धन्धा' तक कह दिया, पर इसके मूल में उनकी ईमानदार सदाशयता ही है कि रचना अपनी सही ज़मीन पर चले और मनुष्य मात्र को सही ढंग से सम्बोधित करे। इस संदर्भ में उन्होंने रचना की मानववादी भूमि का आग्रह किया है।

वाजपेयीजी ने अपने समय के कुछ मुख्य प्रश्नों पर विचार किया है और डॉ० विश्वम्भर उपाध्याय का यह कथन सही है कि वे वाद-विवाद से बचकर नहीं निकलना चाहते, बल्कि उसमें पूरा हिस्सा लेते हैं। प्रासंगिक है कि आचार्यजी कई बार बहस-मुबाहसे में पड़ते हैं और अपनी बात पूरी दृढ़ता से कहते हैं। सहमति-असहमति का प्रश्न दूसरा है, पर उनमें ऐसी जड़ता नहीं कि वे किसी उत्कृष्टता को सही स्वीकृति न दें। वाजपेयीजी अपनी रचनाओं में एक महत्त्वपूर्ण सवाल कई रूपों में उठाते हैं कि रचना और समाज, विशेषतया राजनीति का सम्बन्ध क्या हो? और यह काफी अहम सवाल है, विशेषतया आज के संदर्भ में। 'साहित्य और जीवन' नामक अपने प्रसिद्ध निबंध में वे रचना की सामाजिकता स्वीकारते हुए भी उसकी किंचित स्वतंत्र स्थिति पर बल देते हैं। उन्होंने विस्तार से साहित्य ओर जीवन के संश्लिष्ट सम्बन्धों का तलस्पर्शी विवेचन किया है और बताया कि जीवन रचना में किस प्रकार प्रक्षेपित होता है : 'जीवन तो एक धारा-प्रवाह है, साहित्य में उसकी प्राणदायिनी और रमणीय बूंदें एकत्र की जाती हैं।' या इस संदर्भ में उनकी यह टिप्पणी कि 'महान कलाकार तो देश और काल की सीमा भंग करने में ही सुख मानते हैं और सार्वभौम समाज के प्रतिनिधि बनकर रहते हैं। सामयिक जीवन का उनके लिए उतना ही महत्त्व है जितना वह उनके विराट, सर्वकालीन यथार्थ जीवन की कल्पना में सहायक बन सकता है' (आधुनिक साहित्य, पृ० ४०३)। जाहिर है कि यहां साहित्य के गहरे सांस्कृतिक-सामाजिक दायित्व की बात की जा रही है।

आचार्य वाजपेयी रचना की स्वतंत्र सत्ता के पक्षधर हैं पर वे इसे एक गहन दायित्व से पूर्ण कार्य मानते है—मानव का उन्नयन। इसी प्रकार जब वे रचना को राजनीति का पिछलग्गू मानने से इन्कार करते हैं तब वे रचना की जीवन-सापेक्ष्य स्थिति को स्वीकृति देते हैं। साहित्य अपनी सामग्री वृहत्तर जीवन से प्राप्त करता है, और उसका निषेध करके वह जाएगा कहां? जीवन, मानव जीवन उसका प्रस्थानविन्दु है और उसकी अनिवार्य परिणति भी। उसका भोक्ता भी मानव समाज ही है जिसे हर कृति सम्बोधित करती है। पर वाजपेयीजी सीमा-रेखा

बनाते हैं और उसके मूल में रचना पर पड़ने वाले तरह-तरह के दबाव हैं जो आधुनिक युग में और भी बढ़ते गए है। सामन्ती दौर में फ़रमायशी, चाटुकारी-साहित्य रचा गया पर कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा जैसी प्रतिभाएं हैं जिन्होंने उन दबाओं का निषेध करते हुए, वृहत्तर मानव समाज को सम्बोधित किया। वाजपेयीजी को एहसास है कि हर ज़माने में रचना पर तरह-तरह के दबाव पड़ते हैं, पड़ेंगे, पर सार्थक रचना को इनका विरोध करना चाहिए। इसे ही वे रचना की स्वतंत्र सत्ता अथवा स्वायत्तता कहते हैं—पर यह सब रचना के गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक और मानवीय दायित्व के भीतर से होना चाहिए, यहां अराजकता के लिए कोई गुंजायश नहीं। ज़ाहिर है कि ऐसा करते हुए वाजपेयीजी के समक्ष संसार का सर्वोत्तम सृजन उपस्थित है। साहित्यकार का दायित्व शीर्षक निबंध में वे इस बात पर चिन्ता व्यक्त करते हैं कि साहित्यकार राजनीतिज्ञों का मुह जोहते हैं। वे साहित्य और रचना को राजनीति से कही अधिक श्रेष्ठतर प्रयत्न मानते हुए लिखते हैं : 'साहित्य एक अंतरंग प्रक्रिया है, जो जन-मन का संस्कार करती है, बौद्धिक विकास में योग देती है और समस्त मनुष्यों की समानता का उद्घोष करती है। साहित्यकार यह मानकर चलता है कि मनुष्य मात्र में समान हृदय, समान बुद्धि और समान विवेक की संभावना है और समानता का अधिकार मनुष्यमात्र को है' (राष्ट्रीय साहित्य, पृ० २२)। इसी दृष्टि से वाजपेयीजी रचना की स्वायत्तता का आग्रह करते हैं—उसके सम्पूर्ण सांस्कृतिक दायित्व के साथ। वे रचना के साथ समीक्षा को भी दायित्वपूर्ण कार्य के रूप में ही स्वीकारते है, लिखते है : 'कवि अपने काव्य के लिए ही जिम्मेदार हैं, पर समीक्षक अपने युग की सम्पूर्ण साहित्यिक चेतना के लिए जिम्मेदार हैं।'

आचार्य वाजपेयी को समीक्षक तक सीमित कर दिया जाता है, पर उनके लिए समीक्षा कोई शुद्ध साहित्यिक व्यापार नही है कि थोड़ी टीक-टिप्पणी कर दी गयी. विवेचन-विश्लेषण या फिर मसीहाई मुद्रा में फ़तवे दे दिए गए। कु० सुमन झा ने अपनी पुस्तक 'अज्ञेय का काव्य' के समर्पण में आचार्य वाजपेयी को 'आधुनिकता का प्रथम आलोक' कहा है, जिस पर कुछ तथाकथित आधुनिकता-वादियों को आपत्ति भी हो सकती है। पर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद का विवेचन करते हुए अथवा सूर के काव्य की मानवीय भूमि को उजागर करते हुए वाजपेयीजी अपने समय की कई जड़बद्ध पुरातनपंथी मान्यताओं से जूझते हैं। इसी मुद्दे पर उनका विरोध यशस्वी आचार्यों से होता है और वे हिन्दी रोमांटिक कविता के मानवीय पक्ष को निरन्तर रेखांकित करते है। वास्तव में वे अपनेस मय के लिए एक नई नैतिकता पर बल देते हैं जिसे वे प्रसाद, निराला, पत आदि में उपस्थित पाते है। उनके सौदर्यजगत की चर्चा करते हुए वे इस बात पर बल देते हैं कि कैसे इस काव्य मे आज के समय की जटिलता के भीतर से गुजर सकने की

क्षमता है। वाजपेयीजी ने पिछली सीमारेखा/लक्षमण रेखा का अतिक्रमण किया, इसमें संदेह नहीं और वे स्वच्छन्दतावाद के नये सौन्दर्यजगत का विश्लेषण गहराई से कर सके। इन कवियों का जो सौन्दर्यशास्त्र है उसमें नयी मानवता की आशा-आकांक्षा व्यक्त हुई है, इस पर वाजपेयीजी ने बल दिया है और कहा है कि प्रसाद की कामायनी इसी नयी विचार सरणि, नयी मानवता और नये सौन्दर्यबोध की प्रतिनिधि रचना है। वें लिखते हैं: 'वर्तमान जीवन की सभी मुख्य और मूलभूत समस्याओं को प्रसाद ने कामायनी में ग्रहण किया है। नारी के आदर्श-संस्थापन द्वारा प्रसादजी ने नवयुग की प्रतिनिधि प्रेरणा को सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है' (जयशंकर प्रसाद, पृ० १२२)।

आचार्य वाजपेयी के अध्ययन का पाट काफी चौड़ा है और संसार की सर्वोत्तम कृतियों, विशेषतया जिन्हें हम 'क्लासिक्स' कहते हैं, उनसे उनका निकट परिचय है। उनके लेखन में इसके प्रमाण मिलते हैं और कृतियों का विवेचन करते हुए वे इन्हीं ऊंचाइयों की मांग करते हैं और उसकी पूर्ति न होते देखकर निराश होते हैं, जैसे पंत का परवर्ती काव्य। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्यशास्त्र और भारतीय काव्यशास्त्र के सर्वोत्तम से वे गुजरे हैं और सैद्धांतिक विवेचन में उसका उपयोग करते हैं। कामायनी के वस्तुनिर्माण में वे पश्चिमी ट्रेजिडी और पूर्वी आनन्द-कल्पना की समन्वित स्थिति देखते हैं और कहते हैं कि इससे समीक्षक कठिनाई मे पड़ जाते हैं *कि एक ही कृति में सुखान्त-दुखान्त का संयोजन किस प्रकार हो सकता है?* जयशंकर प्रसाद की नाट्यकृतियों का विवेचन करते हुए वे भारतीय नाट्य-सिद्धान्तों तथा पूर्वी-पश्चिमी नाट्यतत्वों पर तुलनात्मक दृष्टि डालते हैं। इस प्रकार अपने व्यापक अध्ययन का उपयोग वे अपनी समीक्षा में करना चाहते हैं और इन सबके संयोजन से समीक्षा का एक शास्त्र भी पाना चाहते हैं जो आज के संदर्भ में प्रासंगिक और उपादेय हो। यह कार्य किसी बड़े समीक्षक की महत्वाकांक्षा का ही हिस्सा होता है और आचार्य वाजपेयी इसी पंक्ति में आते हैं। रसशास्त्र को अनुपयोगी मानकर नये काव्य ने उसका सम्पूर्ण निषेध किया, पर वाजपेयीजी उस पर एक नयी दृष्टि डालते हैं और काव्यशास्त्र के नवनिर्माण की बात सोचते हुए लिखते हैं कि 'किसी भी देश की ज्ञानराशि का सुव्यवस्थित विवरण भविष्य की संतान के लिए कितना उपयोगी होता है, यह हम पाश्चात्य साहित्यालोचना के उदाहरण से समझ सकते हैं' (रससिद्धान्त, पृ० ५२)। और आगे भी कहते हैं कि 'आधुनिक युग में विज्ञान आदि के प्रभाव से नये वाद सामने आ रहे हैं, परन्तु हमारा प्राचीन भवन भी सुदृढ़ है। प्राचीन काव्यमत आज के नए वादों की उपेक्षा नहीं करते। आज भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से रससिद्धान्त स्वीकार्य हो सकता है। हमें 'सामाजिक' आदि के पक्ष पर विशेष ध्यान देना होगा' (रससिद्धान्त, पृ० ११०)।

आचार्य वाजपेयी ने अपनी बात कह सकने के लिए अपना एक चिन्तन विकसित किया जिसे उन्होंने श्रेष्ठ कृतियों के गहरे सम्पर्क से समृद्ध किया और फिर इसके लिए एक शैली भी विकसित की। जिस प्रकार हिन्दी स्वच्छदन्तावादी कवियों-छायावादियों ने अपना एक सौन्दर्य-जगत निर्मित किया और उसे व्यक्त करने के लिए एक नया प्रतीक-बिम्ब जगत और शब्द तथा अभिव्यक्ति का संसार बनाया, उसी प्रकार आचार्य वाजपेयीजी ने अपनी समीक्षा के लिए एक शैली की तलाश की। सचाई यह है कि नयी बात कह सकने के लिए रचना को अपने लिए एक सही माध्यम और शिल्प खोजना ही पड़ता है अन्यथा बात पूरी सामर्थ्य में व्यक्त नहीं हो पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल में विवेचन-विश्लेषण की अपनी पद्धति है, कई बार बात को समझाने का प्रयत्न करते हुए। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी समीक्षा में निबंधात्मकता का आस्वाद कराते हैं—संस्कृतबहुला भाषा के साथ सहज भाषा को अन्तर्भुक्त करते हुए। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इस दृष्टि से स्वच्छन्दतावाद के साथ क्लासिक पद्धति के भी समीपी हैं कि वे अपनी समीक्षा-भाषा में आभिजात्य गुण का परिचय देते हैं—तत्समप्रधान शब्दावली, प्रौढ़-प्रांजल। यह स्वच्छन्दतावादी प्रभाव तो है ही, पर इसके मूल में उनके अभिव्यक्त सम्बन्धी क्लासिकी आग्रह भी है जिसे वे 'कलात्मक सौष्ठव' कहते हैं। वाजपेयीजी संग्रथित शैली के लेखक हैं और विवेचन के विस्तार में अधिक नहीं जाना चाहते जैसे वे बुद्धिमान पाठक के लिए लिख रहे हों—संकेत करते हुए। इसीलिए वे समीक्षक के रूप में हमसे अतिरिक्त समझ की मांग करते है—एक तो उनके चिन्तन की गहराई और उसके साथ आभिजात्य भाषा। पर जहां वे संस्मरणात्मक होते हैं जैसे निराला अथवा प्रसाद के रेखाचित्र बनाते हुए या केरल के यात्रा प्रसंगों में वहां उनकी भाषा अपेक्षाकृत सहज हो जाती है। वाजपेयीजी की शैली में एक अकादमिक अध्यापक का गुण है जो अपनी बात को प्रमाणों से पुष्ट करता है और चाहता है कि उसके लेखन का एक स्तर बना रहे। उनकी समीक्षा सर्जनात्मक समीक्षा तो है—रचती हुई, पर है वह स्वच्छन्दतावादी युग के भाषा-आभिजात्य की समीपी-क्लासिक पैटर्न पर, जो बात छायावादी कवियों के विषय में भी सही है।

आचार्य वाजपेयी ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद के साथ-साथ यात्रा की और उसे अपनी प्रतिभा से विवेचित-व्याख्यायित किया। वे उसके 'समर्थ समीक्षक' के रूप में सर्वस्वीकृति हैं। जब भी रोमाण्टिक क्रिटिसिज्म अथवा स्वच्छन्दतावादी समीक्षा की चर्चा होगी, उनका नाम मैथ्यू अर्नाल्ड जैसे समीक्षकों की तरह आदर के साथ लिया जायगा। जब भी स्वच्छन्दतावादी युग की वापसी किसी दूसरे रूप में होगी—सामाजिक यथार्थ को अधिकाधिक स्वीकारते हुए, जिसे गोर्की ने क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद कहा है, तब आचार्य वाजपेयी जैसे

समीक्षक अधिकाधिक प्रासंगिक होंगे। उन्होंने अपने ढंग से एक सम्पूर्ण युग के साथ चलने का साहस किया, इससे उनकी ऊर्जा का पता चलता है। अध्यापक-समीक्षक के रूप में उन्होंने अपने संस्पर्श से कई पीढ़ियों को बनाने, संवारने, दिशा देने का प्रयत्न किया, यह उनका सार्थक पक्ष है। जो उनके सम्पर्क में आए वे जानते हैं कि वे कितने संवेदनशील, उदारमना, मानवीय व्यक्ति थे जिनके द्वार सबके लिए सदैव खुले थे। एक सार्थक समीक्षक के रूप में उन्होंने अपने गहन सांस्कृतिक-सामाजिक दायित्व का निर्वाह किया और व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दोनों समीक्षा-क्षेत्रों में कार्य करते हुए अपने समय के साथ जीवन्त यात्रा करने का सक्षम प्रयत्न किया।

□□

परिशिष्ट

आचार्य वाजपेयी की कृतियाँ

जयशंकर प्रसाद
हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी
आधुनिक साहित्य
महाकवि सूरदास
प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन
नया साहित्य : नये प्रश्न
राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएं
कवि निराला
राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध
प्रकीर्णिका
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
आधुनिक काव्य : रचना और विचार
नयी कविता
रस सिद्धांत : नये संदर्भ
आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा
हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग
कवि सुमित्रानन्दन पंत
रीति और शैली

आचार्यजी के लिए

तुम नदी की धार
मैं जल-बिंदु-सा हर क्षण प्रवाहित
रुकूं, ठहरूं, धार बह लूं,
उत्स से छूटा नहीं हूं
धार का ही एक कण हूं,
महासागर से यही जाकर कहूंगा :
'तुम नदी की धार से निर्मित हुए हो।'

वृंत हो तुम
फूल-कांटे एक-सम तुमको रहे हैं
और मैं उस वृंत पर जन्मा हुआ वह फूल
जिसकी पांखुरी बिखरे, धरा से यों कहे :
'लो गंध की गौरव-कथा ले आ गया हूं।'

ओ किरण-यात्री !
तुम्हीं ने ज्योति-कण मुझ में बसाए
चेतना को दीप्ति दे दी,
अग्नि का विश्वास लेकर
मैं धरा पर फैल जाना चाहता हूं।

—प्रेमशंकर